ISSN : 2583 – 7869

VOLUME –02, ISSUE – 05 MAY 2024

THE PAHADI
Agriculture

ISSUE NO - 05

VOLUME - 02

The Mountain Agriculture
E-Magazine

WWW.PAHADIAGROMAGAZINE.IN

Table of Contents

पर्वतीय आंचल में काफल की उन्नत खेती 1

'डा० अंशुमान सिंह/''डा० अरविन्द बिजल्वाण/'''डा० दीपिका चौहान..... 1

'वैज्ञानिक/विषय वस्तु विशेषज्ञ (उद्यान) कृषि विज्ञान केन्द्र, भरसार पौड़ी गढ़वाल, ''सह-निदेशक प्रसार '''विषय वस्तुविशेषज्ञ (पादप सुरक्षा) वी. च.सिं.ग.उत्तराखण्ड औद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, भरसार, पौडी गढ़वाल-२४६१२३ (उत्तराखण्ड)..... 1

हिमाचल प्रदेश के किसानों के बीच सोशल मीडिया का उपयोग पैटर्न 5

डॉ. सविता[1] ,डॉ. मोनिका[2], हिमशिखा[3], ईशा[4] 5

सहायक प्राध्यापक[1,2], विद्यार्थी[3,4] 5

बागवानी एवं वानिकी महाविद्यालय, नेरी, हमरीपुर (हि.प्र.)..... 5

डॉ.यशवंत सिंह परमार बागवानी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, (नौणी सोलन)..... 5

Drone in Indian Agriculture: Opportunities and Challenges 7

Dr. Deepak Rai and Dr. Pankaj Nautiyal 7

Senior Scientist cum Head, ICAR-Krishi Vigyan Kendra..... 7

सब्जियों और फलों के अपशिष्ट का सतत कृषि में उपयोगिता 12

सीमा ठाकुर*, सूरज भान **, इशांत दत्ता**, नयन दीप **एवं राजेश ठाकुर* 12

वरिष्ठ वैज्ञानिक, कृषि विज्ञान केंद्र, सोलन, हिमाचल प्रदेश..... 12

** छात्र, डॉक्टरेट, सब्जी विज्ञान, ... 12

डॉ यशवंत सिंह परमार औद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, नोनी, सोलन 12

स्व-सहायतासमूह: किसानों का सशक्तिकरण और समृद्धि की कुंजी 16

डॉ.सविता [1], डॉ. मोनिका[2], ईशा [3], हिमशिखा[4] 16

सहायक प्राध्यापक[1,2], विद्यार्थी[3,4] 16

बागवानी एवं वानिकी महाविद्यालय नेरी हमरीपुर (हि.प्र.) 16

डॉ.यशवंत सिंह परमार बागवानी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, नौणी (सोलन)..... 16

सेबाग बना सेब बागवानों का आकर्षण का केंद्र 19

डा० राजेंद्र कुकसाल, उद्यान विशेषज्ञ 19

Microgreens-Combating Malnutrition Problem 21

Deepak Sharma[1], Radhika Negi[2], Ankita Thakur[1], ... 21

[1]School of Agricultural Sciences, Baddi University of Emerging Sciences and technology ... 21

[2]CSK HPKV KVK, Lahaul and Spiti1 at Kukumseri, HP 21

खीरावर्गीय फसलों में फलमक्खी, *बैक्ट्रोसेरा कुकुर्बिटी* (टेफ्रिटिडीः डिप्टेरा), का प्रबंधन 24

[१]डॉ. द्वारका' और[२] निशा चढ़ार 24

[१]कीटशास्त्र विभाग, जवाहर लाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर, मध्य प्रदेश- ४८२००४ 24

[२]एम.एस.सी. (बॉटनी), सरकारी पीजी कॉलेज, टीकमगढ़, मध्य प्रदेश- ४७२००१..... 24

ORGANIC COTTON CULTIVATION FOR SUSTAINABLE ENVIRONMENT..... 27

S. Lakshmanan[1], S.R. Shri Rangasami[2], P. Dhamodharan[3] 27

[1]PG Scholar, [2]Associate Professor, [1,2,3] Department of Agronomy..... 27

Tamil Nadu Agricultural University, Coimbatore 27

"Uber for Tractors" Concept: Promoting Inclusive Agricultural Technologies..... 31

Dhamodharan P[1], Somasundaram S[2], Anantharaju P[3] and R Chinnadurai[4]..... 31

[1]Ph.D Scholar, [2]Professor & Head, [3]Associate Professor (PB&G), [4]Senior Research fellow, . 31

Cotton Research Station, Veppanthattai-621116 31

www.pahadiagromagazine.in

The Pahadi Agriculture e-Magazine ISSN: 2583-7869

Volume-2, Issue-5 **Article ID: 10212**

पर्वतीय आंचल में काफल की उन्नत खेती

'डा० अंशुमान सिंह/''डा० अरविन्द बिजल्वाण/'''डा० दीपिका चौहान

'वैज्ञानिक/विषय वस्तु विशेषज्ञ (उद्यान) कृषि विज्ञान केन्द्र, भरसार पौड़ी गढ़वाल, ''सह-निदेशक प्रसार

'''विषय वस्तुविशेषज्ञ (पादप सुरक्षा) वी.च.सिं.ग.उत्तराखण्ड औद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, भरसार, पौडी गढ़वाल-२४६१२३ (उत्तराखण्ड)

काफल का संक्षिप्त परिचय, महत्व एवं सम्भावनाएं

काफल उत्तराखण्ड, हिमाचल प्रदेश, एवं जम्मू कशमीर के पर्वतीय क्षेत्र में पाया जाने वाला एक विशेष प्रकार का जंगली फल है। इसका कुल माईरेसी हैं। इसका जन्म स्थान चीन को माना जाता है। इसके पौधे समुद्र तल से ८०० मीटर की ऊँचाई से लकर २८०० मीटर की ऊँचाई तक पाये जाते है। काफल के पौधे सदाबहार होते हैं तथा पर्वतीय क्षेत्रों मे काफल की कुछ पतक्षड़ वाली प्रजातियाँ भी पायी जाती है। यह चीड़, बाँज, व बुरांस आदि वृक्षों के मध्य में उगने वाला पौधा है। सामान्यतः यह पूर्व मुखी, पश्चिमी मुखी व दक्षिण मुखी पहाड़ों पर अधिकता मे पाया जाता है। उत्तर मुखी पहाड़ों पर काफल बहुत कम पाया जाता है। कम ऊँचाई वाले क्षेत्रों मे यह अप्रैल के अन्तिम सप्ताह से मई के प्रथम सप्ताह मे पकने लगता है जबकि अधिक ऊँचाई वाले स्थानो मे यह जून-जुलाई मे पकता है। इसमे नर व मादा वृक्ष अलग-अलग होते है। इसका फल प्रारम्भ में हरा, पकने पर लाल व पूरा पकने पर बैंगनी-काला हो जाता है। यद्यिप यह जंगली पौधा है लेकिन इसके फलों के स्वाद को देखते हुये पर्वतीय राज्यों मे पिछले कुछ समय से किसानो ने काफल के पौधों का संरक्षण एवं संवर्धन शुरू कर दिया है। फलो को तुड़ाई उपरान्त कृषकों द्वारा १५०-२०० रूपये प्रति कि.ग्रा. की दर से विक्रय किया जा रहा है तथा भविष्य मे काफल का अच्छा उत्पादन करके कृषक भाई उत्तम आय अर्जित कर सकते है। काफल की बागवानी की भविष्य मे प्रचुर संभावना है इससे किसानो को

काफी फायदा मिल सकता है। काफल की बागवानी की वैज्ञानिक जानकारी लोगो को नहीं होने के कारण आज तक यह फल केवल जंगलों से प्राप्त किया जाता रहा है। अतः आज आवश्यकता है कि किसानो को इसकी वैज्ञानिक तकनीक से बागवानी करने एवम् इससे होने वाले लाभो की समुचित जानकारी दी जाए। पर्वतीय क्षेत्रों मे जहां काफल की बागवानी हो सकती है वहाँ बंजर परती भूमि भी उपलब्ध रहती है। अतः ऐसी भूमि मे काफल के पौधे लगा

कर भूमि का उपयोग करने के साथ अच्छी आमदनी भी प्राप्त की जा सकती ।

भूमि का चयन एवं तैयारी

काफल उत्पादन हेतु कम अम्लीयता वाली मृदा उपयुक्त रहती है। इसकी बागवानी ऐसी जमीन पर करनी चाहिए जो अन्य फसलों/बागवानी के लिए अनुपयुक्त हो, या बंजर हो। बरसात शुरू होते ही (जून-जुलाई मे) 1-0x1-0 मी. गहराई के गड्ढें खोद कर उनमे गोबर तथा बॉज के पत्तों की खाद भर देनी चाहिए। बरसात के दिन गड्ढों को ऐसे ही खाली छोड़ देना चाहिए जिससे गोबर की खाद एवं पत्तियां गड्ढे मे ही ठीक से सड़ जाए। दिसम्बर-जनवरी मे पौधों को रोप देना चाहिए। रोपने के बाद सप्ताह मे एक दिन पानी देते रहना चाहिए जिससे गड्ढों मे पर्याप्त नमी बनी रहे तथा पौधे ठीक से लगजाए। तीन चार माह बाद पौधो मे नई पत्तियाँ आ जाती है। पर्वतीय क्षेत्रों मे जंगली जानवर छोटे पौधों को अधिक नुकसान पहुँचाते है। अतः नये लगाए हुए पौधे को जंगली जानवरो से बचाकर सुरक्षित रखना चाहिए। गर्मियों के मौसम मे इन जंगलो मे आग लगने की स्थिति मे काफल के पेड़ भी क्षतिग्रस्त हो जाते है। अतः काफल की बगावनी द्वारा इस तरह के नुकसान से काफल के पौधो को बचाया जा सकता है। दो वर्ष बाद पौधों मे जरूरत के अनुसार छड़ाई कर देनी चाहिए, जिससे पौधे उपुयक्त आकार ले सकें। काफल जितना सुंदर दिखता है उतना ही स्वादिष्ट भी होता है। गर्मियो मे जंगलो मे हरे पत्तो के बीच छोटे लाल, बैगनी-काले रंग के काफल देखने में अत्यन्त सुन्दर लगते है।

बीज की बुवाई का समय, दूरी एवं प्रबन्धन

काफल सामान्यतः बीज द्वारा प्रवर्धित किया जाता है। इसका बीज सख्त व अपारदर्शी होता है। यह तब तक सुसुप्तावस्था मे रहता है जब तक कि इसका बीज अपारदर्शी रहता है। बुवाई कि लिए परिपक्व बीजों का उपयोग करना चाहिए। बीज जब पक कर पूरा काले रंग का हो जाय तो समझना चाहिए कि वह पूर्ण रूप से परिपक्व हो चुका है। काफल के बीज को सुखाया नहीं जाता है। तैयार किये गए बेड़ो मे ताजे परिपक्व बीजों की बुआई ४ से.मी. गहराई मे पंक्ति मे करनी चाहिए। बीज से बीज की दूरी ४ से.मी. व पंक्ति से पंक्ति की दूरी ३० से.मी. रखनी चाहिए। बीजों की बुआई फल पकने के समय जून के दूसरे पखवाड़े या जुलाई के प्रथम पखवाडे मे करनी चाहिए। जून के महीने मे जब तक बरसात शुरू नहीं होती तब बीज बोने के बाद बेड़ो को हर तीसरे दिन पानी देते रहना चाहिए। बरसात शुरू होने के बाद बेड़ो से पानी निकलने की उचित व्यवस्था करनी चाहिए, ताकि बेड़ो मे पानी न रूकने पाये। पानी ज्यादा होने से बीजों के सड़ने की सम्भावना रहती है। काफल का बीज अंकुरित होने मे पैंतालीस से साठ दिन का

समय लगता है। इस प्रकार बीज जब अंकुरित हो कर छोटे-छोटे पौधे बन जाएं तो इनको पॉलीथीन के छोटे बैगो मे रोपित कर देना चाहिए ताकि जहाँ इनको लगना हो वहाँ तक पौधा सुरक्षित पहुँच सके। इस प्रकार तैयार किये गए पौधे एक वर्ष बाद रोपित करने योग्य हो जाता है।

पौधशाला मे पौध तैयार करना

सामान्यतः काफल पर्वतीय अचंल में स्वतः जंगलो मे अपने आप उग जाता है। प्राकृतिक परिस्थिति मे जंगलों मे काफल के बीज पक कर जमीन पर गिर जाते हैं मिट्टी में दब जाने से अगले वर्ष अंकुरित होकर नये पौधे के रूप मे विकसित हो जाते है। प्राकृतिक रूप से अंकुरित होकर विकसित हुये नये पौधों की संख्या बहुत कम होती है। अतः किसान अधिक मात्रा मे पौधे उगाने एवं प्रवर्धन के लिए नर्सरी प्रबन्धन का उपयोग करते हैं। नर्सरी तैयार करने के लिए जमीन पर बेड बनाने की आवश्यकता होती है। १ मीटर चौड़ा ग २ मीटर लम्बाई वाला बेड़ काफल के बीज बोने के लिए उचित होता है। बेड़ो की मिट्टी हल्की होनी चाहिए। इसके लिए बेड के ऊपर बाँज, बुरांस के पोरा (लिट्टर) की ६ इंच मोटी परत बिछा कर मिट्टी मे मिला देना चाहिए जिससे मिट्टी एकदम हल्की हो जाय।

काफल का औषधीय महत्व एवं उपयोग

चीन, जापान तथा दक्षिण एशिया के कुछ अन्य देशों मे प्राचीनकाल से ही काफल की छाल का उपयोग त्वचा रोग एवं घावों के उपचार के लिए किया जाता रहा है। काफल के फल का उपयोग स्वेट फिट नाम के रोग के उपचार के लिए किया जाता है। काफल के पौधे का उपयोग हृदय रोग, कालरा तथा पेट की बीमारियों के उपचार हेतु भी किया जाता है। यह फल पेट की सफाई करता है तथा कब्जियत को दूर करता है। काफल मे विटामिन सी प्रचुर मात्रा मे होता है। काफल की पत्तियां जानवरो के चारे के काम आती है। इसकी पत्तियों से कीडे-मकोड़े दूर रहते है। अतः पत्तियों का प्रयोग कीडे-मकोड़े भगाने के लिए (इन्सेक्ट रिपेलेन्ट के रूप मे) भी किया जाता है। इसकी लकड़ी का उपयोग ईधन के रूप में, फल खाने एवं दवाओं के लिए होती है। काफल से तेल भी निकाला जाता है जिसका उपयोग विभिन्न प्रकार की औषधियों मे किया जाता है। काफल मे विभिन्न प्रकार के फीनोलिक यौगिक (कम्पाउन्ड) १.७८-२.५१ मि.ग्रा. गैलिक अम्लतुल्य/ग्रा. ताजेफल के बराबर पाये जाते है तथा फ्लेवेन्वायड्रस की मात्रा १.३१-१.५६ मि.ग्रा. क्वेरसेटिन/ग्रा. ताजेफल के बराबर होती है।

तुड़ाई उपज एवं भंडारण प्रबन्धन

वर्तमान परिस्थितियों मे पर्वतीय, दूरदराज के क्षेत्रों मे यह फल किसानो के आर्थिक स्रोतों को बढ़ाने मे सहायक हो रहा है। इस फल की बिक्री मे महिलाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। वे दिनभर मे १२-१४ कि.ग्रा. तक काफल के फलों की तुड़ाई जंगलो से कर लेती है। बाजार/मण्डी मे यह फल 150-00 से 200-00 रूपये प्रति कि.ग्रा. तक बिक जाते है। काफल को पौधे से तोड़ने के पश्चात् सामान्य कमरे के तापमान पर १-२ दिन तक भण्डारित किया जा सकता है। इससे अनैक प्रकार के खाद्य पदार्थ जैसे-जैम, जैली, स्क्वेस, जूस इत्यादि बनाये जाते है। इस प्रकार काफल से अच्छी आमदनी प्राप्त की जा सकती है। पर्वतीय क्षेत्रों मे काफल इनता लोकप्रिय फल है कि मुद्रा

(रूपये) की कमी होने की स्थिति मे लोग काफल लेने के लिए बदले मे गहत, मसूर आदि कीमती दालें तक देते है। अतः बिना किसी लागत के दूरदराज के पहाड़ी क्षेत्रों मे यह आमदनी का एक अच्छा स्त्रोत है। इससे होने वाले लाभ के कारण पिछले कुछ समय से किसानो का इस फल की तरफ रूझान बढ़ने लगा है तथा काफल की उन्नत एवं वैज्ञानिक खेती की ओर प्रेरित हो रहे है तथा पर्वतीय आंचल मे काफल की बागवानी से भविष्य मे कृषक अच्छा लाभ कमा सकते है।

www.pahadiagromagazine.in
The Pahadi Agriculture e-Magazine
ISSN: 2583-7869
Volume-2, Issue-5
Article ID: 10213

हिमाचल प्रदेश के किसानों के बीच सोशल मीडिया का उपयोग पैटर्न

डॉ. सविता[1] ,डॉ. मोनिका[2], हिमशिखा[3], ईशा [4]
सहायक प्राध्यापक[1,2], विद्यार्थी[3,4]
बागवानी एवं वानिकी महाविद्यालय, नेरी, हमरीपुर (हि.प्र.)
डॉ.यशवंत सिंह परमार बागवानी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, (नौणी सोलन)

एक समय था जब किसान मौसम से संबंधित आवश्यक जानकारी और कृषि जगत में क्या हो रहा है, ऐसी जानकारी को एक दूसरे के-साथ वार्ता द्वारा साझा करने के लिए एक साथ आते थे। अब दिन-ब-दिन लोग जिनमें किसान भी शामिल हैं, सोशल मीडिया उपकरणों जैसे कि फेसबुक, ट्विटर, यूट्यूब, व्हाट्सएप और ब्लॉग का उपयोग करके आवश्यक जानकारी, चाहे व्यक्तिगत हो या कृषि से संबंधित, साझा करते हैं।

आज के दिन अधिकांश किसान स्मार्टफोन, कंप्यूटर, इंटरनेट, और सेलफोन का उपयोग करते हैं, लेकिन जब सोशल मीडिया की बात आती है, तो कई लोग पीछे हो सकते हैं। सोशल मीडिया उन इंटरनेटआधारित एप्लिकेशनों का - हवाला देता है जो उपयोगकर्ताओं द्वारा उत्पन्न सामग्री का निर्माण और साझा याआदान - प्रदान करने की अनुमति देते हैं।

पूरी दुनिया में 4.95 बिलियन सक्रिय सोशल मीडिया उपयोगकर्ता हैं। फेसबुक 3.03 बिलियन मासिक उपयोगकर्ताओं के साथ अग्रणी सोशल नेटवर्क है, इसके बाद यूट्यूब 12.49 बिलियन, व्हाट्सएप 2 बिलियन, इंस्टाग्राम 2 बिलियन हैं। पारंपरिक रूप से, कृषि से संबंधित जानकारी को औद्योगिक मीडिया जैसे टेलीविजन, अखबार, रेडियो और पत्रिकाओं ने बाधित किया है।

हाल के वर्षों में प्रौद्योगिकी जागरूकता और कंप्यूटर लिटरेसी में बढ़ोतरी के साथ, लोगों किसानों द्वारा कृषि/ से संबंधित समाचार, शिक्षा और अन्य जानकारी के लिए विभिन्न प्रकार के सोशल मीडिया का उपयोग बढ़ता जा रहा है। सोशल मीडिया एक बहुत व्यापक कृषि समुदाय बनाता है ताकि भौतिक दूरी और अलगाव की समस्याएँ न हों। हिमाचल प्रदेश में अधिकांश किसान खेती और बागवानी से संबंधित जानकारी, शिक्षा और समाचार के लिए फेसबुक और व्हाट्सएप का उपयोग करते हैं।

यहां विभिन्न फेसबुक पेज, व्हाट्सएप समूह और यूट्यूब चैनल हैं जो किसानों के बीच खेती, बागवानी और

मौसम संबंधी जानकारी साझा करते हैं। ये प्लेटफार्म विभिन्न कृषि क्षेत्रों और पहलुओं की सेवा प्रदान करते हैं, जैसे कि फसलों, डेयरी, बकरी, और मुर्गी पालन।

जबकि अधिकांश प्रयास व्यक्तिगत होते हैं, यूट्यूब पशुपालन के लिए खासतौर पर जानकारी का महत्वपूर्ण स्रोत बन चुका है। बड़ी दर्शक संख्या की वृद्धि के बावजूद, कृषि प्रसार के सामाजिक मीडिया में पूरी संभावना अभी भी अप्रयुक्त है, जिससे हाल ही में सरकारी पहलों के साथ उम्मीदवार परिणाम सामने आ रहे हैं।

इस नए मीडिया यानी सोशल मीडिया के विकास से हिमाचल के किसानों के बीच ज्ञान साझा करना पारंपरिक और औद्योगिक मीडिया की तुलना में अधिक सरल बन गया है।

फेसबुक

फेसबुक हिमाचल प्रदेश में कृषि में एक बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। यह किसानों के बीच सबसे अधिक उपयोग किया जाने वाला सोशल मीडिया टूल है। कई फेसबुक पेज हैं जो कृषि से संबंधित जानकारी साझा कर रहे हैं, जो किसानों को नई ज्ञान और कौशल प्राप्त करने में सहायक होते हैं। स्वस्थ माटी संपन्न किसान प्राकृतिक खेती की पहचान (SPNF)" इस फेसबुक पेज पर किसानों के बीच प्राकृतिक खेती के संबंध में आवश्यक जानकारी प्रदान करता है, विशेष रूप से महिलाओं के लिए विभिन्न फसलों जैसे कृषि फसलों, फल और सब्जियों के लिए। एप्पल ग्रोअर ऑफ " यह पेज सेब उगाने वालों को सेब के बाग़ान "हिमाचल में आवश्यक सांस्कृतिक कार्यों के बारे में जानकारी प्रदान करता है ताकि किसानों को सेब के उत्पादन से संबंधित निर्णय लेना आसान हो। कुछ "पी बी फार्म" अन्य सोशल मीडिया पेज हैं जो मधुमक्खियों को पालने और शहद उत्पादन के बारे में जानकारी शामिल करते हैं।

व्हाट्सएप

व्हाट्सएप हिमाचल प्रदेश में फेसबुक के बाद दूसरा सबसे अधिक उपयोग किया जाने वाला सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म है, यहां बहुत सारे व्हाट्सएप ग्रुप हैं जो किसानों को वर्तमान प्रौद्योगिकी, फसल की विविधता और कीटरोगों के संबंध में जानकारी साझा करते हैं-, टेक्स्ट संदेशों, फोटो और वीडियो के माध्यम से, इन व्हाट्सएप ग्रुप्स को किसानों के लिए कुछ कार्यशालाओं

और प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किया जा सकता है। किसान इन व्हाट्सएप ग्रुप्स में जानकारी साझा कर सकते हैं ताकि उनके पीछे आवश्यक जानकारियाँ प्राप्त सकें।

YouTube

YouTube, कृषि में प्रमुख प्लेटफ़ॉर्म, सीधे संवाद और प्रतिक्रिया को सुविधाजनक बनाता है। सोशल मीडिया एकीकरण ने कृषि व्यवसाय को एक क्रांति प्रदान कर दी है, किसानों को उपभोक्ताओं से जुड़ने और कृषि कथाओं को साझा करने की सुविधा प्रदान करते हैं। पहले सोशलाइजिंग के लिए उपयोग किया गया, प्लेटफ़ॉर्म अब कृषि मुद्दों पर चर्चा करने और प्रभावी जानकारी को प्रसारित करने के लिए महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में कार्य करते हैं। ये प्लेटफ़ॉर्म किसानों, फसल उत्पादकों, और रेंचर्स को विश्व स्तर पर प्रसारण की सुविधा प्रदान करते हैं, बिना किसी लागत के, यहां तक कि वे समय और इंटरनेट एक्सेस का निवेश कर, कृषि ऑपरेशन को वैश्विक स्तर पर मजबूत करते हैं। YouTube, 2005 में PayPal के कर्मचारियों द्वारा स्थापित किया गया, दुनिया का दूसरा सबसे ज्यादा देखा जाने वाला वेबसाइट बन गया है, जिसमें एक अरब मासिक उपयोगकर्ता हैं। यह एक गतिशील सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म और वीडियो साझा हब के रूप में कार्य करता है, जो जैविक किसानों को अपनी विशेषज्ञता को विश्व स्तर पर प्रसारित करने के लिए एक शक्तिशाली माध्यम प्रदान करता है। YouTube के माध्यम से किसान अपने ज्ञान और तकनीकों को प्रदर्शित कर सकते हैं, जिससे कृषि समुदाय में मूल्यवान जानकारी का एक आदान प्रदान होता है।- YouTube प्लेटफ़ॉर्म के प्रसिद्धता का पता किसानों में है, जैसे कि सबसे ज्यादा पसंद किये जाने वाले वीडियो विषय, जैसे कि विशिष्ट फसलों जैसे टमाटर का उत्पादन कैसे करें कि ट्यूटोरियल से लेकर महत्वपूर्ण उपकरणों और बीज की प्राप्ति पर चर्चाएँ। इसके अलावा, YouTube जैविक किसानों के लिए एक बहुपक्षीय उपकरण के रूप में कार्य करता है, जो उन्हें केवल स्थायी खेती के अभ्यास पर दर्शाने के लिए ही नहीं, बल्कि अपने फार्म के उत्पादों और सेवाओं को प्रमोट करने के लिए वीडियो का उपयोग करने की भी सुविधा प्रदान करता है। यह सहकारी वातावरण साझा सीखने और नवाचार की संस्कृति को पोषित करता है, जो अंततः पूरी जैविक खेती उद्योग को समृद्ध करता है। कुछ प्रसिद्ध यूट्यूब चैनल हैं:

How Farms Work: हाउ फार्म्स वर्क यूट्यूब चैनल दिखाता है कि फार्म्स कैसे काम करते हैं और उपकरणों के प्रस्तावना, दैनिक गतिविधियों, आदि का ऑपरेशन दिखाता है। इस चैनल से प्रति सप्ताह लगभग तीन वीडियो अपलोड किए जाते हैं।

The Farming Life: द फार्मिंग लाइफ एक और यूट्यूब चैनल है जो परिवारिक किसानी के बारे में जानने की अनुमति देता है। प्रति सप्ताह लगभग 12 वीडियो अपलोड किए जाते हैं।

माय ऑर्गेनिक फार्मिंग: माय ऑर्गेनिक फार्मिंग चैनल जानकारी दिखाने के लिए वीडियो बनाता है, जैसे कि जैविक खेती, सब्जियों को जैविक रूप से उगाना और जैविक कीटनाशक और गोबर आदि का उपयोग करना। प्रति माह लगभग एक वीडियो अपलोड किया जाता है।

द नैचुरल फार्मरद नैचुरल फार्मर एक और पसंदीदा : यूट्यूब चैनल है। आगंतुक खाद्य को उगाने, घास का उपयोग करने आदि पर वीडियो का आनंद लेते हैं। प्रति माह एक वीडियो अपलोड किया जाता है।

www.pahadiagromagazine.in
The Pahadi Agriculture e-Magazine
ISSN: 2583-7869
Volume-2, Issue-5
Article ID: 10214

Drone in Indian Agriculture: Opportunities and Challenges

Dr. Deepak Rai and Dr. Pankaj Nautiyal
Senior Scientist cum Head, ICAR-Krishi Vigyan Kendra

A drone refers to any aerial vehicle that depends on software for autonomous flying or that responds to remote commands from a pilot is considered a drone. Numerous drones are equipped with cameras to record images and propellers to stabilize their flying patterns. Drone technology has been embraced by industries such as transportation, agriculture, search and rescue and videography.

It is stated that the largest contribution to India's GDP is the service sector. As the world's leading producer of pulses, milk, rice, wheat, sugarcane, spices, and other products, our nation holds this position. Through their operations in the agriculture sector, these also contribute significantly to the economy. An astounding 18.3% of India's GDP comes from the country's agricultural sector (Gross Domestic Product). It is regarded as the primary source of income for roughly 58% of the population, mostly in rural areas. The combined Gross Added Value of India's forestry, fishery, and agriculture sectors is around Rs 18.55 lakh crore (US$265.51 billion). Despite the fact that agriculture in India contributes to the GDP, we still need to increase productivity and efficiency in the industry to reach the maximum capability. There are several aspects and issues that must be recognized, backed up, and given remedies. Many essential farming tasks, such as applying pesticides, watering irrigation systems, and crop monitoring, are now carried out using inappropriate techniques. The available resources are insufficient, not distributed in accordance with the weather, or not fully utilized.

In farming, environmental elements such as temperature, precipitation, and soil quality are vital. Drone agriculture enables farmers to adjust to certain surroundings and make thoughtful decisions in response. The information obtained is useful in managing crop health, crop treatment, crop scouting, irrigation, field soil analysis, and agricultural damage evaluations. Drone surveys reduce costs and time while increasing crop yields.

Experts anticipate that by 2050, there will be nine billion people on the planet. It is also claimed that agricultural consumption will rise concurrently by around 70%. The benefits of drone technology, which includes AI, ML,

and remote sensing capabilities, are driving up demand for the technology. Through its online "Digital Sky Platform," the central government has recognized the significance of artificial intelligence, machine learning, and unmanned aerial vehicles (UAVs). Indian drone businesses have taken advantage of this chance to advance their technological capabilities.

- **Importance of drone in agriculture sector:**

Drone technology quickly reestablishes traditional agrarian practices and is subsequently accomplishing them as follows

I. **Irrigation Monitoring:** Drones, including hyper spectral, thermal, or multispectral sensors, recognize areas that are too dry or need improvement by the farmer. Drone survey helps improve water efficiency and disclose potential pooling/leaks in irrigation by providing Irrigation monitoring yields calculations of the vegetation index to help realize the health of crops and emitted heat/energy.

II. **Crop Health Monitoring and Surveillance:** It is crucial to track the health of the vegetation and spot bacterial/fungal plagues in the early stages. Agriculture drones can see which plants reflect different amounts of green light and Near-infrared spectroscopy (NIRS) light. This data helps produce multispectral images to track crop health. Quick monitoring and discoveries of any defects can help save crops. In circumstances of crop failure, the farmer can also document the damages for accurate insurance claims.

III. **Crop Damage Assessment:** Agricultural drones fitted along with multispectral sensors and RGB sensors also detect field areas inflicted by weeds, infections, and pests. According to this data, the exact amounts of chemicals needed to fight these infestations are known, and this helps diminish the costs inflicted by the farmer.

IV. **Field Soil Analysis:** The drone survey allows farmers to obtain information about their land's soil conditions. Multispectral sensors allow seizing data useful for seed planting patterns, thorough field soil analysis, irrigation, and nitrogen-level management. Precise Photogrammetry/ 3D mapping permit farmers to analyze their soil conditions thoroughly.

V. **Planting:** Drone startups in India have invented drone-planting systems that allow drones to shoot pods, their seeds, and crucial nutrients into the soil. This technology doesn't only reduce costs by almost 85% but also increases consistency and efficiency.

VI. **Agricultural spraying:** Through drone crop spraying, human contact with such harmful chemicals is limited. Agri-drones can carry out this task much quicker than vehicles/airplanes. Drones with RGB sensors and multispectral sensors can precisely identify and treat problematic areas. Professionals say that aerial spraying is five times faster with drones when compared to other methods.

Locust swarms are known to feed on crops, trees, and other types of plants. This feeding can destroy crops planted, causing famine and deprivation in societies that solely rely on these crops for survival. In recent

times, swarms of locusts have invaded several areas in India, especially Rajasthan. With nearly 90,000 ha of land affected across 20 districts, these growing swarms are threatening to amplify into an agrarian disaster. Most nations battling locust swarms rely significantly on organophosphate chemicals. These are utilized in little concentrated lots by vehicle-mounted and aerial sprayers. Rajasthan has stationed drones to carry out the spraying efficiently. Drones can diffuse pesticides on approximately 2.5-acres in merely 15 minutes. Using drones to combat the locust swarms is an immediate, secure, and practical approach.

VII. **Livestock tracking:** The drone survey allows the farmers not to keep track of their crops only but also monitor the movements of their cattle. Thermal sensor technology helps find lost animals and detect an injury or sickness. Drones can carry out this function favorably, and this adds comprehensively to the production of vegetation.

- **Benefits of drone technology:**

As innovators introduce new technologies, their commercial uses increase day by day. The government has been easing restrictions for drone usage and is supporting startups to come up with novel ideas. As drone surveys become more common, they also become more cost-effective. In agriculture, they have a plethora of advantages. Some are as follows:

1. **Enhanced Production –** The farmer can improve production capabilities through comprehensive irrigation planning, adequate monitoring of crop health, increased knowledge about soil health, and adaptation to environmental changes.
2. **Effective and Adaptive Techniques –** Drone usage results in regular updates to farmers about their crops and helps develop strengthened farming techniques. They can adapt to weather conditions and allocate resources without any wastage.
3. **Greater safety of farmers –** It is safer and more convenient for farmers to use drones to spray pesticides in terrains challenging to reach, infected areas, taller crops, and power lines. It also helps farmers prevent spraying the crops, which leads to less pollution and chemicals in the soil.
4. **10x faster data for quick decision-making –** Drone surveys back farmers with accurate data processing that encourages them to make quick and mindful decisions without second-guessing, allowing farmers to save the time invested in crop scouting. Various sensors of the drone enable capturing and analyzing data from the entire field. The data can focus on problematic areas such as infected crops/unhealthy crops, different colored crops, moisture levels, etc. The drone can be fixed with several sensors for other crops, allowing a more

accurate and diverse crop management system.

5. **Less wastage of resources –** Agri-drones enables optimum usage of all resources such as fertilizer, water, seeds, and pesticides.
6. **99% Accuracy rate –** The drone survey helps farmers calculate the precise land size, segment the various crops, and indulge in soil mapping.
7. **Useful for Insurance claims –** Farmers use the data captured through drones to claim crop insurance in case of any damages. They even calculate risks/losses associated with the land while being insured.
8. **Evidence for insurance companies –** Agricultural insurance sectors use agri-drones for efficient and trustworthy data. They capture the damages that have occurred for the right estimation of monetary payback to the farmers.

- **Disadvantage of drone application in agriculture:**

Professional use of drones in agriculture requires expertise. Only certified drone pilots must operate these unmanned aerial vehicles for in-field monitoring.

An agriculture drone flies between 10 and 25 minutes. In case of an advanced drone, its flight may have duration of up to 35 minutes in the air. However, longer flights are an attribute for more expensive drones. An agriculture drone equipped with a special camera or a sprayer, means extra load to carry during the flight. Hence, you must expect to decrease the time of the flight as well as the covered area of the field.

In general, drones are depreciating assets but not investments. This means that the cheaper

quadrocopter you have, the fewer features it includes. A sprayer drone with 15 litres of capacity will cost at least £1,000. This octocopter designed for precision variable rate application of liquid pesticides, fertilizers, and herbicides. It can carry up to 10 kg of liquid payloads.

For the purpose of agriculture use, the drone must fly below 400 feet or 121 meters. Also, there are specific risks in operating drones next to special areas like airports, aerodrome or other air fields. To avoid collisions, an agriculture drone should never fly near an airport or close to aircraft. It is a criminal offence and also it endangers the safety of an aircraft in flight.

Drone weighs between 250g to 20kg, then you must register your drone at DGCA. Firstly, anyone who will fly must pass a theory test to get a flyer ID. The flyer is the farmer or any person who flies the agriculture drone. In order to get a flyer ID, you must pass an online theory test. Secondly, the person that's responsible for the drone must register to get an operator ID.

In general, agriculture drones are more vulnerable to adverse weather conditions. And this is one of the biggest of the disadvantages

of agriculture drones. They should not fly in rain or in high humidity conditions. Fog or snowfall are also bad for operating drones. There are three important reasons not to use agriculture drones in bad weather.

As mentioned before, agricultural drone technology is undoubtedly the future of the Indian agrarian community. It can transform traditional farming methods in uncountable ways. Even though this technology is more complex to be familiar with, it will yield its results in no time once learned. Farmers must understand the entire process. Determination of goals, creating equilibrium in the drone and software utilized, and being familiar with the principles of using such technology will stand as a challenge. The farmers will inevitably need comprehensive training or partnerships with third-party experts in the drone industry for the acquisition of reliable data. Drones have changed the course of obtaining data in almost every type of industry, and will only deem to become bigger and better in the coming years.

Reference:

Nautiyal, C. T., Nautiyal, P., Papnai, G., Mittal, H., Agrawal, K., Shivani, Vishesh, & Nandini, R. (2024). Importance of Smart Agriculture and Use of Artificial Intelligence in Shaping the Future of Agriculture. *Journal of Scientific Research and Reports*, 30(3):129–138. https://doi.org/10.9734/jsrr/2024/v30i31864

Singh D., Nautiyal P., Raghav C. S. (2023). Agriculture Informatics for precision Framing, *Food and Scientific Reports*. 4(3):1-7

Nautiyal P., Nautiyal C. T., Agrawal K., Khaniya S., Semwal A., Karki B. (2022). Importance of Artificial Intelligence and Machine Learning in Agriculture. *International Journal of Agriculture Sciences*, 14 (10):11758-11760.

www.pahadiagromagazine.in
The Pahadi Agriculture e-Magazine
ISSN: 2583-7869
Volume-2, Issue-5
Article ID: 10215

सब्जियों और फलों के अपशिष्ट का सतत कृषि में उपयोगिता

सीमा ठाकुर*, सूरज भान **, इशांत दत्ता**, नयन दीप **एवं राजेश ठाकुर*
वरिष्ठ वैज्ञानिक, कृषि विज्ञान केंद्र, सोलन, हिमाचल प्रदेश
** छात्र, डॉक्टरेट, सब्जी विज्ञान,
डॉ यशवंत सिंह परमार औद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, नोनी, सोलन

आधुनिक दुनिया का सामना विकट चुनौतियों के एक जटिल संगम से है, जिसमें वैश्विक जनसंख्या अभूतपूर्व दर से बढ़ रही है। इस के बीच, खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करना एक चिंताजनक मुद्दा बन गया है। समाधानों की तलाश में, स्थायी कृषि एक आशा का प्रकाश बन रही है, जो बढ़ती उत्पादकता की दिशा में एक मार्गपथ प्रदान करती है और हमारे प्राकृतिक संसाधनों का संतुलन सुरक्षित रखती है। इस लेख का उद्देश्य है फलों और सब्जियों के अपशिष्ट का उपयोग करने की संभावनाओं को व्यापक रूप से अन्वेषण करना, ताकि स्थायी और सतत कृषि अभ्यासों को प्रोत्साहित किया जा सके।

➢ **फलों और सब्जियों के अपशिष्ट:**

फलों और सब्जियों की खेती में शामिल कृषि प्रक्रियाएं एक बड़े मात्रा में अपशिष्ट उत्पन्न करती हैं। ये उपउत्पाद, जो अक्सर अनदेखे तथा सही ढंग से प्रबंधित नहीं किए जाएं तो एक पर्यावरणिक चुनौती प्रस्तुत कर सकते हैं। सामान्य अभ्यास में इस अवशेष को छोड़ देने का एक सामान्य तरीका है, जिससे प्रदूषण और संसाधन की बर्बादी में योगदान होता है। हालांकि, यदि इसे उद्देश्य और रणनीति के साथ दृष्टिकोण से निरीक्षित किया जाए, तो ये अपशिष्ट संसाधनों को मूल्यवान स्रोत में परिणामित किया जा सकता है, जिससे कृषि की समस्त स्थायिता में योगदान हो सकता है।

➢ **फल और सब्जी के अपशिष्ट का उपयोग:**

i. कम्पोस्टिंग (वानस्पतिक खाद बनाना):

यह एक समय-परीक्षित और प्रभावी तकनीक है जिससे फलों और सब्जियों के अपशिष्ट को पौष्टिक खाद्य से भरपूर कम्पोस्ट में बदला जा सकता है। यह प्राकृतिक सामग्री, प्राकृतिक उर्वरक के रूप में कार्य करती है, जो मिट्टी की पुनर्निर्माण और संरचना में सुधार करती है। कम्पोस्टिंग प्रक्रिया से सूक्ष्मजीवों के सहारे प्राकृतिक सामग्री का विघटन होता है, जिससे ह्यूमस-समृद्ध सामग्री बनती है जो पौधों के विकास के लिए लाभकारी होती है। कम्पोस्टिंग को अपनाने वाले किसान न केवल अपशिष्ट प्रबंधन का समाधान करते हैं, बल्कि कृत्रिम उर्वरकों पर निर्भरता कम करके, एक स्वस्थ और सतत कृषि पारिस्थिति को बढ़ावा देते हैं।

ii. बागवानी में उपयोग: फलों और सब्जियों के अपशिष्ट को सीधे बागवानी प्रथाओं में शामिल करना एक व्यावहारिक और

पर्यावरण-सहित सुलभ द्रष्टिकोण है। इन जैविक अवशेषों को खेतों में फैलाकर, किसान पौधों को आवश्यक पोषण प्रदान कर सकते हैं, जिससे यह प्राकृतिक और सतत उर्वरक के रूप में कार्य करता है। यह तकनीक केवल मिट्टी को ही पोषित नहीं करती, बल्कि एक संतुलित कीटाणु समुदाय को भी बढ़ावा देती है, जिससे एक और सहनशील और रोग-प्रतिरोधी फसल को बढ़ावा मिलता है।

iii. बायोगैस उत्पादन: फलों और सब्जियों के अपशिष्ट को बायोगैस उत्पादन के लिए अवायवीय अपघटन के माध्यम से प्रयुक्त किया जा सकता है। इस प्रक्रिया में, ऑक्सीजन की अभाव में सूक्ष्म जीवों द्वारा जैव सामग्री का विघटन होता है, जिससे बायोगैस, मुख्यत: मिथेन, का उत्पाद होता है। इस प्रयुक्त बायोगैस को खेत में विभिन्न ऊर्जा आवश्यकताओं में उपयोग किया जा सकता है, जैसे कि वायुमंडल, गर्मी, या बिजली उत्पन्न करने के लिए। ऊर्जा उत्पादन के अलावा, अवायवीय अपघटन एक अपशिष्ट प्रबंधन रणनीति के रूप में कार्य करता है, जिससे कृषि गतिविधियों का पर्यावरणीय प्रभाव कम हो सकता है।

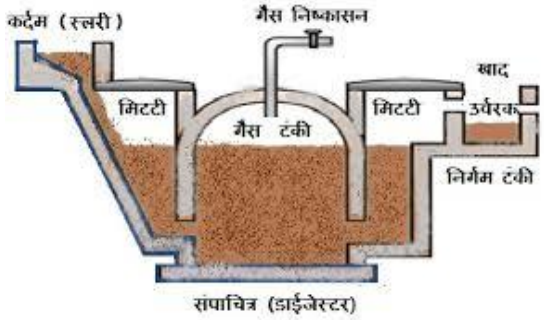

संपाचित्र (डाईजेस्टर)

iv. बीज पोषण: बीजों को फलों और सब्जियों के अपशिष्ट से प्राप्त पोषण से समृद्धि देना एक नवाचारी द्रष्टिकोण है जो पौधों के प्रारंभिक विकास पर काफी प्रभाव डाल सकता है। बीजों को एक पोषण-समृद्धि मिश्रण से आवरण करके, जिसमें प्राकृतिक अवशेष होते हैं, किसान सुनिश्चित कर सकते हैं कि उगते हुए पौधे आवश्यक तत्वों का एक बूस्ट प्राप्त करें। यह अभ्यास मजबूत पौधों के विकास और बेहतर फसल उत्पन्न करने की दिशा में कदम रखता है।

v. प्राकृतिक कृषि: प्राकृतिक खेती के सिद्धांत प्राकृतिक प्रक्रियाओं के साथ मेलजोल में काम करने की महत्वपूर्णता पर बल देते हैं। फलों और सब्जियों के अपशिष्ट को सीधे खेती के अमल में मिलाना इन सिद्धांतों के साथ अनुसरण करता है। किसान इन अपशिष्ट सामग्रियों को मल्च के रूप में इस्तेमाल कर सकते हैं, जिससे फलों और सब्जियों है। यह मल्चिंग कई उद्देश्यों की सेवा करती है, जैसे कीड़े-मकोड़े की नियंत्रण, नमी की देखभाल, और धीरे-धीरे पोषण मुक्ति। प्राकृतिक खेती तकनीकें बाह्यिक योगदानों पर निर्भरता को कम करती हैं, जो एक आत्म-सहारी कृषि प्रणाली को बढ़ावा देती है।

प्राकृतिक मलचिंग

लाभ

i. प्राकृतिक संसाधनों का उचित उपयोग: फलों और सब्जियों के अपशिष्ट का उपयोग प्राकृतिक संसाधनों का उचित उपयोग की दिशा में एक आदर्श का प्रतिष्ठान है। अपशिष्ट को एक बोझ के रूप में नहीं देखकर, इसे मूल्यवान संपत्ति में बदला

जाता है। यह द्रष्टिकोण चक्रीय अर्थव्यवस्था और सतत संसाधन प्रबंधन के सिद्धांतों के साथ मेल खाता है।

ii. सतत कृषि प्रथाएं: उचित अपशिष्ट प्रबंधन अभ्यास सतत कृषि प्रणालियों के विकास में योगदान करता है। जैविक अपशिष्ट को पुनः प्रयोग करके किसान रासायनिक उर्वरकों पर अपनी आश्रिता कम करते हैं, जिससे कृषि के पर्यावरणीय प्रभाव को कम करने में मदद मिलती है। सतत प्रथाएं मृदा स्वास्थ्य को बढ़ावा देती हैं, अपक्षरण को कम करती हैं, और कृषि परिस्थितिकियों की संपूर्ण सहनशीलता में योगदान करती हैं।

iii. जल संरक्षण: फलों और सब्जियों के अपशिष्ट को कृषि प्रथाओं में शामिल करना जल संरक्षण में प्रमुख भूमिका निभाता है। इन प्राकृतिक सामग्रियों को प्राकृतिक मल्च के रूप में कार्य करते हुए, ये जल की उपशमन, खरपतवार की वृद्धि, और मिट्टी में जल संचार को बढ़ाते हैं। विशेषकर अनियमित वर्षा वाले क्षेत्रों में, यह अभ्यास कृषि में सुधारित जल उपयोग की कुशलता में योगदान करता है।

iv. आर्थिक लाभ: किसानों के लिए सतत अपशिष्ट प्रबंधन के अनुसरण करने से उन्हें आर्थिक फायदा होता है। कृत्रिम उर्वरकों पर कम आधारित होने से खर्च में कमी होती है जिससे किसानों को आर्थिक बचत होती है। इसके अलावा, बायोगैस उत्पादन के माध्यम से ऊर्जा उत्पन्न करने की क्षमता एक वैकल्पिक आय स्रोत प्रदान करती है। ये अभ्यास कृषि प्रचालन की आर्थिक सक्षमता और दीर्घकालिक स्थायिता में सहायक रूप से योगदान करते हैं।

v. पर्यावरण संरक्षण: फलों और सब्जियों के अपशिष्ट का उपयोग करने का एक महत्वपूर्ण लाभ है कि यह पर्यावरण संरक्षण में मदद करता है। अपशिष्ट को मूल्यवान संसाधनों में बदलकर, किसान पर्यावरण प्रदूषण को कम करने में सक्रिय भूमिका निभाते हैं। सतत प्रथाएं अपनाने से किसान सक्रिय रूप से पर्यावरण में होने वाले ग्रीनहाउस गैस के उत्सर्जन को कम करने में योगदान कर रहे हैं, जो पारंपरिक अपशिष्ट प्रबंधन विधियों के साथ संबंधित हैं, और इससे हमारे ग्रह के स्वास्थ्य को सुधारने में मदद कर रहे हैं।

➢ **चुनौतियां और समाधान**: फलों और सब्जियों के अपशिष्ट का सतत कृषि के लिए उपयोग करने के संभावित लाभ स्पष्ट हैं, लेकिन इसमें ध्यानपूर्वक सोच-समझकर कई चुनौतियों का सामना करना भी आवश्यक है। एक प्रमुख चुनौती यह है कि किसानों को अपशिष्ट के उपयोग के लाभ और तकनीकों के बारे में जागरूकता और शिक्षा की आवश्यकता है। कई पारंपरिक कृषि प्रथाएं संरक्षित नीतियों के साथ मेल नहीं खा सकती हैं, जिससे मानसिकता और ज्ञान प्रसार की एक बदलाव की आवश्यकता है, जो किसानों के बीच में निम्नलिखित तरीकों से किया जा सकता है:

i. जागरूकता और शिक्षा: सतत कृषि प्रथाओं, जिसमें अपशिष्ट का उपयोग भी शामिल है, के बारे में जागरूकता बढ़ाने के लिए की जाने वाली पहल क्रियाशील हैं। किसानों को खाद उत्पादन, बायोगैस उत्पादन, और अन्य अपशिष्ट प्रबंधन तकनीकों के लाभ के बारे में सिखाने में कार्यशालाएं, प्रशिक्षण कार्यक्रम, और विस्तार सेवाएं महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। सरकार और गैर-सरकारी संगठन सहयोग करके किसानों को ज्ञान और कौशल से सशक्त बनाने के लिए बाह्यिक कार्यक्रम विकसित कर सकते हैं।

ii. आधारिक संरचना और तकनीकें: अपशिष्ट का उपयोग करने के अभ्यास को लागू करने के लिए कुछ आवश्यक संरचना और तकनीकी सुधार की आवश्यकता हो सकती है। किसानों को खाद उत्पादन सुविधाएं, बायोगैस संग्रहक, या अन्य प्रभावी अपशिष्ट प्रबंधन के लिए उपयुक्त उपकरणों की पहुंच की आवश्यकता हो सकती है। ऐसी तकनीकों को अपनाने को बढ़ावा देने के लिए सरकारी समर्थन सब्सिडी, या प्रोत्साहन राशि का समर्थन कर सकता है, जिससे इन्हें एक और बड़ी संख्या के किसानों के लिए उपलब्ध कराया जा सकता है।

iii. नीति समर्थन: नीति निर्माता सतत कृषि प्रथाओं को अपनाने के लिए एक संबोधनशील वातावरण बनाने में महत्वपूर्ण

भूमिका निभाते हैं। ऐसी नीतियों का निर्माण जो अपशिष्ट उपयोग को प्रोत्साहित करती हैं, जैविक खेती को बढ़ावा देती हैं, और आवश्यक बुनियादी ढांचे के विकास के लिए सहायता प्रदान करती हैं, व्यापक रूप से अपनाने को प्रेरित कर सकती हैं।

iv. अनुसंधान और नवाचार: कृषि के लिए अपशिष्ट का उपयोग के क्षेत्र में निरंतर अनुसंधान और नई तकनीकी महत्वपूर्ण हैं। इसमें नई तकनीकों का विकसन, मौजूदा प्रथाओं को सुधारना, और अपशिष्ट के सामग्रियों के नए अनुप्रयोगों का अन्वेषण शामिल है। अनुसंधान संस्थानों, कृषि विस्तार सेवाओं, और किसानों के बीच सहयोग से नवीनतम समाधानों का प्रसार किया जा सकता है।

v. समुदाय संगठन: सतत कृषि के चारों ओर एक समुदाय भावना बनाने से सामूहिक क्रिया को प्रोत्साहित करना संभव है। किसानों के सहकारी, समुदाय-नेतृत्व वाले पहलू, और मिल-जुल कर सीखने के मंच अपशिष्ट के उपयोग प्रथाओं को अपनाने के लिए समर्थन करने में सहारा प्रदान कर सकते हैं। समुदाय के भीतर साझा की गई अनुभव और सफलता की कहानियां दूसरों को सतत दृष्टिकोणों की ओर प्रवृत्ति करने के लिए प्रेरित कर सकती हैं।

निष्कर्ष: उपसंहार में, फलों और सब्जियों के अपशिष्ट का सतत कृषि में उपयोग समृद्धि के लिए एक बड़े वादे का एक महत्वपूर्ण स्रोत है जो आधुनिक खाद्य उत्पादन और पर्यावरण संरक्षण की समस्याओं का समाधान कर सकता है। अपशिष्ट प्रबंधन के समाधान के अलावा, ये प्रथाएं सतत विकास के और भी बड़े लक्ष्यों का समर्थन करने में योगदान करती हैं। अपशिष्ट का उपयोग कृषि तंत्रों में मिलाकर, हम न केवल उत्पादकता में सुधार करते हैं बल्कि एक बदलते मौसम की अनिश्चितताओं के प्रति सहनशीलता बढ़ाते हैं।

सतत कृषि की दिशा में यात्रा एक सामूहिक प्रयास है जिसमें किसान, नीति-निर्माता, शोधकर्ता, और समुदाय शामिल होते हैं। इसमें एक समस्त द्रष्टिकोण शामिल होता है जिसमें शिक्षा, तकनीक, नीति समर्थन, और समुदाय संज्ञान शामिल होता है। जब हम बढ़ती हुई जनसंख्या को भोजन प्रदान करते हैं और साथ ही पृथ्वी को संरक्षित रखने के जटिलताओं का सामना करते हैं, तो फलों और सब्जियों के अपशिष्ट का प्रभावी उपयोग एक सतत और सहारी कृषि के लिए एक महत्वपूर्ण और प्रभावशाली कदम के रूप में सामने आता है।

www.pahadiagromagazine.in

The Pahadi Agriculture e-Magazine ISSN: 2583-7869

Volume-2, Issue-5 Article ID: 10216

स्व-सहायतासमूह: किसानों का सशक्तिकरण और समृद्धि की कुंजी

डॉ.सविता [1], डॉ. मोनिका[2], ईशा [3], हिमशिखा[4]

सहायक प्राध्यापक[1,2], विद्यार्थी[3,4]

बागवानी एवं वानिकी महाविद्यालय नेरी हमरीपुर (हि.प्र.)

डॉ.यशवंत सिंह परमार बागवानी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, नौणी (सोलन)

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार है। लाखों किसान देशभर में अपने खेती के लिए मेहनत करते हैं लेकिन कई बार वे अपने उत्पादों का उचित मूल्य प्राप्त करने से वंचित रह जाते हैं। इन समस्याओं का समाधान करने के लिए "स्वसहायता सङ्ग्रहों का गठन किया है, जो न केवल उनकी आर्थिक स्थिति को मजबूत करते हैं बल्कि उन्हे विपणन क्षेत्र में भी सहायता प्रदान करते हैं।

स्व-सहायता समूह क्या है

स्वसहायता समूह एक सामुहिक वितीय संस्था होती है।. जिसमें समान आर्थिक स्तर के लोग एक साथ एकट्ठे होते हैं। इस समुह के सदस्य अपने आर्थिक स्वतंत्रता के सहायक होते हैं अलग अलग कार्यों में सहयोग देते हैं। स्व-सहायता समूह अकसर गाँवों या शहरों के लोक सभाओं में गठित होते हैं और किसानों को उनकी समस्याओं का समाधान प्रदान करते हैं।

कृषि में स्वसहायता समुह किसानों को अकसर अपने उत्पादों को बेचने के लिए समाजिक तथा आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है अनेक कारणों की वजह से वे अक्सर मध्यम और छोटे स्तरीय व्यापारिक गतिविधियों के निर्माण के लिए सक्षम नहीं होते हैं। इस सहायता समुह संदर्भ में स्व के किसानो के लिए एक महत्वपूर्ण संगठन होता है जो उन्हें उत्पादो के विपणन में सहायता प्रदान करता है।

दुनिया भर में स्वयं सहायता समूहों की स्थिति और उनका महत्व

स्वयं सहायता समूह (एसएचजी) दुनियाभर में गरीबी कम करने और सामाजिक-आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए एक महत्वपूर्ण उपकरण बनकर उभरे हैं। भारत में, स्वयं सहायता समूह आर्थिक सशक्तीकरण, विशेष रूप से महिलाओं के लिए, में अग्रणी भूमिका निभाते हैं।

वर्तमान स्थिति

व्यापक पहुंच: दुनिया भर में स्वयं सहायता समूहों की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है। कई विकासशील देशों ने गरीबी उन्मूलन और सामुदायिक विकास के लिए उन्हें बढ़ावा दिया है।

विविधता: आजीविका गतिविधियों से लेकर सामाजिक मुद्दों तक, स्वयं सहायता समूह अब विभिन्न क्षेत्रों में काम कर रहे हैं।

सरकारी समर्थन: कई देशों की सरकारें स्वयं सहायता समूहों को वित्तीय सहायता, कौशल विकास कार्यक्रम और बैंक लिंकेज जैसी सुविधाएं देकर उनका समर्थन करती हैं।

महत्व

आर्थिक सशक्तीकरण: स्वयं सहायता समूह बचत और ऋण जैसी वित्तीय सेवाएं प्रदान करके गरीबों को आर्थिक रूप से सशक्त बनाते हैं। यह उन्हें अपना व्यवसाय शुरू करने या आय के स्रोत विकसित करने में मदद करता है।

सामाजिक समर्थन: स्वयं सहायता समूह एक मजबूत सामाजिक नेटवर्क प्रदान करते हैं। सदस्य एक-दूसरे का समर्थन करते हैं, जिससे उन्हें कठिनाइयों का सामना करने और संसाधनों को साझा करने में मदद मिलती है।

महिला सशक्तीकरण: भारत में, स्वयं सहायता समूहों ने विशेष रूप से ग्रामीण महिलाओं के सशक्तीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह उन्हें आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनने और निर्णय लेने में भाग लेने का अवसर देता है।

सामाजिक सुधार: स्वयं सहायता समूह बालविवाह, दहेज प्रथा जैसी सामाजिक बुराइयों के खिलाफ जागरूकता फैलाकर सामाजिक सुधार में भी योगदान देते हैं।

भारत में स्वयं सहायता समूह (एसएचजी) का स्थिति और सफलता की कहानियाँ

भारत में स्वयं सहायता समूह (एसएचजी) गरीबी उन्मूलन और महिला सशक्ति करण के क्षेत्र में एक सफल पहल साबित हुई हैं।

वर्तमान स्थिति:

बड़ी संख्या में समूह: अनुमान के अनुसार, भारत में लगभग 10 करोड़ महिलाएं 70 लाख से अधिक स्वयं सहायता समूहों से जुड़ी हुई हैं।

सरकारी सहायता: सरकार इन समूहों को बैंक लिंकेज, कौशल विकास कार्यक्रम और सब्सिडी जैसी सुविधाएं देकर प्रोत्साहित करती है।

सकारात्मक प्रभाव: एसएचजी ने महिलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त बनाया है, उन्हें बचत करने की आदत डाली है और अपना व्यवसाय शुरू करने में मदद मिली है।

सफलता की कहानियाँ:

लक्ष्मी का सपना, गुजरात: लक्ष्मी गुजरात के एक गाँव की रहने वाली थीं। वह हमेशा से अपना अचार का कारोबार शुरू करना चाहती थीं। लेकिन पैसों की कमी के कारण उनका सपना पूरा नहीं हो पा रहा था। गांव में बने स्वयं सहायता समूह से जुड़ने के बाद उन्हें लोन मिला और उन्होंने अपना अचार का बिजनेस शुरू किया। आज लक्ष्मी का अचार पूरे जिले में प्रसिद्ध है और वह कई लोगों को रोजगार भी दे रही हैं।

शीला की सफलता, कर्नाटक: शीला कर्नाटक के एक गाँव में रहती थीं। उनके पति की कमाई इतनी नहीं थी कि परिवार का खर्च अच्छे से चल पाए। स्वयं सहायता समूह के बारे में सुनकर शीला उसमें शामिल हो गईं। समूह की मदद से उन्होंने सिलाई का हुनर सीखा और फिर लोन लेकर अपना बुटीक खोल लिया।आज शीला न सिर्फ अपने परिवार का खर्च चला रही हैं बल्कि गाँव की अन्य महिलाओं को भी सिलाई सिखा कर उन्हें आत्मनिर्भर बनाने में मदद कर रही हैं।

ये सिर्फ दो उदाहरण हैं। देशभर में ऐसी कई कहानियां हैं जहां स्वयं सहायता समूहों ने महिलाओं की जिंदगी बदल दी है।

हिमाचल प्रदेश में आत्म सहायता समूहों की भूमिका

हिमाचल में स्वसहायता समूहों का महत्वपूर्ण योगदान है जो विभिन क्षेत्रों में लोगों की मदद करते हैं। यह लोगों को आत्मानिर्भर बनाते हैं औरउन्हें अपनी समस्याओं का समाधान ढूंढने के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

स्वसहायता समूह हिमाचल प्रदेश में स्थापित किए गए हैं ताकि स्थानिय लोगों के सामाजिक और आर्थिक रूप से मजबुत बनाया जा सकें। इस **समूह** में स्थानीय महिलाए अपनी रोजगारी के लिए काम करती हैं और अपने परिवारों के निर्माण के लिए आवश्यक सामाजिक संपति का उपयोग करती हैं।

इन **स्व-सहायता समूह** के अंतर्गत, महिलाएं बुनाई, कढ़ाई, अनाजों की खेती, बागवानी और आचार जैग, चटनियों बनाने जैसे कामो में लगी रहती हैं। इसके अलावा कुछ **समूह** विभिन्न खादा प्रसंस्करण, पशुपालन, उद्योगिक काम और, विभिन्न प्रकार की शैक्षिका शेक्षाणिक योजनाओं मे भी शामिल है। इन समूहों के माध्यम से महिलाएं अपनी समस्याओं को साधा करती है और आर्थिक सहायता एक दूसरे का साथ देती भी प्रदान करती हैं।

हमीरपुर जिले में सेल्फ हेल्प ग्रुप की एक सफल कहानी इस प्रकार है:

जब श्रीमती राधिका शर्मा ने अपने गाँव में सेल्फ हेल्प ग्रुप की स्थापना की, तो उन्हें सिर्फ एक छोटी सी समूह की उम्मीद थी। लेकिन समय के साथ, इस ग्रुप ने न केवल अपने सदस्यों को सशक्त बनाया, बल्कि पूरे गाँव के विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। शुरुआत में, ग्रुप के सदस्य लोगों को विभिन्न कौशलों का प्रशिक्षण देते हुए महिलाओं के रोजगार के अवसरों की खोज करने में सहायता करते थे। उन्होंने स्वयं सहायता समूह के माध्यम से कृषि, बुनाई, और गर्मियों में ठंडाई बनाने का कारोबार आरंभ किया।

समय के साथ, इस समूह ने अपने उत्पादों को स्थानीय बाजार में बेचने के लिए एक स्वयं सहायता को-ऑपरेटिव का गठन किया। इसके फलस्वरूप, उन्होंने अपने आय को बढ़ाया और समूचे समुदाय कोआर्थिक रूप से मजबूत बनाया।

इस समूह की सफलता का अभिन्न हिस्सा, श्रीमती शर्मा और उनके साथी सदस्यों की सामाजिक सशक्तिकरण के प्रयासों में था। उन्होंने महिलाओं को अपने अधिकारों की जागरूकता दिलाने के लिए काम किया और उन्हें स्वावलंबन के लिए प्रोत्साहित किया।

आज, हमीरपुर जिले के इस सेल्फ हेल्प ग्रुप की कहानी एक प्रेरणास्पद उदाहरण है, जो समाज में आर्थिक समृद्धि और महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा देने के लिए प्रतिबद्ध है।"

www.pahadiagromagazine.in
The Pahadi Agriculture e-Magazine
ISSN: 2583-7869
Volume-2, Issue-5
Article ID: 10217

सेबाग बना सेब बागवानों का आकर्षण का केंद्र

डा० राजेंद्र कुकसाल, उद्यान विशेषज्ञ

कलासन नर्सरी फार्म द्वार जनपद पौड़ी गढ़वाल के थलीसैंण विकास खंड के चोपड़ा (नौगांव) में स्थापित सेबाग फार्म सेब बागवानों का आकर्षण का केंद्र बना हुआ है। उत्तर पूर्वी ढाल, 1738 मीटर की ऊंचाई, सिंचाई हेतु पानी की उपलब्धता एवं जंगल से घिरे सेब के लिए अनुकूल जलवायु वाले इस बगीचे की स्थापना बर्ष 2023 में हुई जिस पर एक वर्ष बाद ही याने 2024 में ही फल लगने शुरू हो गये है। सेब के इस बगीचे में अनुवांशिक एवं भौतिक रूप से विशुद्ध एम 9 रूट स्टॉक्स पर उच्च घनत्व में चार हजार सेब के पौधे लगाए गये है जिनका रख रखाव उच्च स्तर का है। इस बाग में सेब के पौधों के लिए मजबूत सपोर्ट सिस्टम का निर्माण किया गया है, उचित ड्रिप सिंचाई प्रणाली लगाई गई है, फर्टीगेशन सिस्टम लगाया गया है। बगीचा के चारों ओर सोलर फैंसिंग लगी है। सड़क के पास होने के कारण आने जाने वाले लोग रुक कर सेब के इस बाग को देख रहें हैं व प्रेरित हो रहे हैं।

सेब में उच्च घनत्व की आधुनिक खेती -

आधुनिक सेब की खेती को उच्च घनत्व वाली खेती भी कहा जाता है। पारंपरिक बगीचे की तुलना में इसमें प्रति इकाई पेड़ों की संख्या अधिक होती है जिससे उत्पादन प्रति इकाई आठ से दस गुना तक बढ़ाया जा सकता है।

पौधों की दूरी के आधार पर सेब रोपण की प्रणालियां (Planting Systems)-

1.पारंपरिक विधि - बीजू पौधों पर (Seedlings) पर तैयार सेब के पौधे आकार में बड़े होते हैं, किस्मों के आधार पर लाइन से लाइन की दूरी एवं लाइन में पौध से पौध की दूरी 20x20 फीट (110 पौधे / एकड) से 12x12 फीट (310 पौध/एकड़, स्पर किस्में) तक होती है।

2.कम घनत्व -आम तौर पर MI 793, MM111 क्लोनल रूटस्टॉक्स का उपयोग कम घनत्व वाले पौध रोपण के लिए किया जाता है। यह भी किस्मों पर निर्भर करता है। कम घनत्व वाले पौध रोपण 14x8 (गैर स्पर के लिए 395/ एकड़) से 12x7 (स्पर प्रकार के लिए 527/ एकड़) किस्मों के लिए किया जाता है।

3.मध्यम घनत्व- इस विधि में पौध रोपण के लिए M7, MM106, M116 क्लोनल रूटस्टॉक्स का अधिकतर उपयोग किया जाता है। घनत्व 12x6 और 11x5 फीट है। कुल पौध रोपण 805 और 615 पेड/एकड़ होता है।

4.उच्च घनत्व- इस प्रणाली में M9, M26 के रूट स्टॉक्स उपयोग किए जाते हैं, 10x3 और 8x2.25 फीट आदर्श दूरी हैं। घनत्व 1470 और 2460 पेड़ प्रति एकड है इस प्रणाली में पौधों

को सहारा देने हेतु एक मजबूत सपोर्ट सिस्टम के निर्माण की आवश्यकता होती है।

5.अल्ट्रा हाई डेंसिटी- पेड़ों की छतरी को रूटस्टॉक्स M9, M26 पर नियंत्रित किया जाता है। उपयोग की गई दूरी 8x2.1 फीट (2635 पेड/एकड़) और 7x1.7 (3720 पेड/एकड़) है। इस प्रणाली में एक मजबूत सपोर्ट सिस्टम निर्माण की आवश्यकता होती है।

कलासन नर्सरी फार्म जिनके द्वारा इस बगीचे की स्थापना की गई है इस फर्म के प्रबंध निदेशक एवं मुख्य कार्यकारी अधिकारी श्री विक्रम सिंह रावत मूल रूप से पौड़ी जनपद के पांवों विकास खंड के सीकू क्लूण गांव के निवासी हैं। इनकी जन्म भूमि व कर्मभूमि हिमाचल प्रदेश रही है हिमाचल में आपकी सेब की हाइटेक नर्सरी कलासन नाम से है जो आज उच्च घनत्व में सेब की फार्मिंग के साथ साथ उच्च स्तरीय ट्रेनिंग और कंसल्टेंसी सेंटर बन चुका है। उत्तराखण्ड में अपने मूल (पैतृक स्थान) में 2018 से आपने सेब की नर्सरी पर कार्य प्रारंभ किया अबतक कलासन नर्सरी द्वारा राज्य में 80 से अधिक सरकारी व व्यक्तिगत सेव के बाग स्थापित किए गए हैं। पौड़ी जनपद के धूमाकोट में वर्षों से बंजर पड़े उद्यान विभाग के पटेलिया फार्म को बर्ष 2018 में तत्कालीन जिलाधिकारी पौड़ी धीराज गर्ब्याल के सहयोग से आपकी टीम द्वारा विकसित किया गया। पटेलिया फार्म में वर्तमान में उच्च घनत्व में सेब का बाग के साथ ही रूट स्टॉक्स नर्सरी तैयार की जा रही है पर्यटकों को भी यह केन्द्र आकर्षित कर रहा है। माडल के तौर पर जिलाधिकारी पौड़ी के आवासीय परिसर में भी आपकी टीम द्वारा उच्च घनत्व का सेब का बगीचा विकसित किया है।

श्री रावत का कहना है कि उत्तराखंड में सेब की फसल हिमाचल से पहले तैयार होती है, जिसे बाजार में दाम भी अच्छा मिलेगा। एक एकड़ यानी बीस नाली जमीन पर उच्च घनत्व प्रणाली में लगभग 1300 पौधे सेब के लगाए जा सकते हैं। पांचवे साल से सारे खर्चे निकालकर 20 नाली सेब के बगीचे से आसानी से सब खर्चे निकालकर छह लाख रूपए सालाना तक आराम से कमाए जा सकते हैं।

पहाड़ में एक साथ खेत नहीं हैं तो बागवानी के लिए कंपनी या कोओपरेटिव बनायी जा सकती है सामूहिक खेती करने पर जंगली जानवरों और बंदरों से भी आसानी से फसल को बचाया जा सकता है।

सलाह - अनुकूल जलवायु, ऊंचाई, ढलान, भूमि व सूक्ष्म वातावरण होने पर ही सेब के बाग लगायें।

एम 9 रूट स्टॉक्स पर उच्च घनत्व की सेब की खेती केवल उन बागवानों के लिए फायदेमदं है जिनके पास सभी साधन (मजबूत स्पोर्ट सिस्टम निर्माण, उचित ड्रिप सिंचाई प्रणाली, फर्टीगेशन सिस्टम लगाने की क्षमता) अपना समय व सम्पूर्ण जानकारी उपलब्ध हो।

उत्तराखण्ड में बागवानों के लिए कम घनत्व एम आई 793 व एम एम 111 अथवा मध्यम घनत्व एम 7, एम 116, एमएम 106 रूट स्टॉक्स पर सेब की बागवानी अधिक लाभदायक हो सकती हैं।

www.pahadiagromagazine.in

The Pahadi Agriculture e-Magazine ISSN: 2583-7869

Volume-2, Issue-5 Article ID: 10218

Microgreens-Combating Malnutrition Problem

Deepak Sharma[1], Radhika Negi[2], Ankita Thakur[1],

[1]School of Agricultural Sciences, Baddi University of Emerging Sciences and technology

[2]CSK HPKV KVK, Lahaul and Spiti1 at Kukumseri, HP

Abstract

As there is a several fold increase in the world population, there should be change in food system for the supply of ample nutrition. The malnutrition (hidden hunger) problem has topped up and exaggerated greater percentage of population globally. Micro-greens are the definite group of vegetable that are spotted as a source to combating the problem of malnutrition. Micro-greens are the tiny version of edible young greens with abundant nutrition in them. There are more than 80-100 recognized crop varieties that are cultivated as microgreens. The cultivation aspects of micro-greens are much easier and are grown for household purpose to commercial marketing. The nutrition aspects are higher in micro-greens compared to that of matured ones. The present article details the aspect of microgreen production and its vital role to counter the problem of malnutrition.

Keywords: Micro-greens, malnutrition, hidden hunger and nutrition

Introduction

Globally from past to present, the problem of malnutrition is of a great menace for humans. Malnutrition is a shortfall of enough minerals, nutrients, vitamins and phytochemicals including chlorophyll, terpenes, organo-sulphur and poly-phenol compounds in the regular diet. Owing to the imbalanced consumption pattern of food without nutrients, the diet associated diseases such as diabetes, hypertension, obesity, cardiovascular problems, cancer and stroke are escalating in world-wide nations. It is estimated by FAO (Food and Agricultural Organization) that currently, near 795 million people or 10% of total world population are undernourished and 4.5% of children's are under weight. Seven million children's those who are under the age of five dies annually because of hidden hunger (World Health Organization). In addition, the human populace are expanding consistently and are to be incredible in future. Hence the issue of malnutrition problem and endeavours towards finding the imaginative implies that can assist with mitigating the issue and guarantee for nutritional security must be seriously concerned. Vegetables known as a productive food are an immense source of nutrition. Numerous studies had indicated that consumption of vegetables can reduce several diseases. In order to address the requirements for the diet with rich of nutrients and freshness a new product "microgreens" has been introduced by the vegetable industry.

Microgreens

Microgreens or vegetable confetti or micro-herbs are grown for their immature tender greens that are been raised from herb, vegetable or grain seeds (Kou *et al*., 2014). Microgreens comes under the special group of vegetable that differs from sprouts and baby greens (early-cut leafy vegetables). In recent years, the popularity of microgreens are widened up as novel culinary ingredients for its broad range of alluring colours and strong flavour. They are severed in sandwiches, soups, salads and also in main dishes. Quick growing and the crops that can be easily germinated are competent for the production of microgreens. Crops species that are grown as microgreens includes radish, cabbage, carrot, turnip, chard, beet, broccoli, pea, bok choy, kale, celery, amaranth, sesame, lettuce, cress, arugula, endive, alfalfa, mustard, sorrel, clover, chia, canola, fennel, flax, dill, chervil, basil and cilantro.

Nutrition status of Microgreens

Functional compounds such as minerals, antioxidants, phenolics and vitamins are present in a broadly differing amount in various microgreens. The level of phytonutrients varies according to the stages of growth in plants and found decreasing from seedling stage (sprouts and microgreens) to fully matured stage. Microgreens are mostly consumed raw, retaining all its chemical compounds, that helps in the intake of all the nutrients without being lost. However growing, harvesting and the storage conditions have a determinable effect on nutrient content of microgreens.

Production of Microgreens

Microgreens can be produced by an individual for a house hold purpose at a small scale or for commercial marketing in a large scale by industries. Microgreens can be grown indoor (Greenhouse) or outdoor (Open field) conditions. Soil or soil less media can be used for its production where individual are recommended with traditional soil cultivation and the hydrophonics system of growing for large scale production. Seeds of species that are grown into mature plants can be used for microgreen production. Seed treatment becomes compulsory when the media being used is not sterilized. Proper light should be provided since phytochemical accumulation in microgreens are based on it. It is noted that natural sunlight with good air circulation and low humidity were required for quality production of microgreens. The seedlings of Microgreens must be kept moist by watering it twice a day.

Figure 1: Microgreens beetroot (A), cilantro (B), radish (C) grown in peat mix tray and brassica (D) grown in hydrophonics channel (Kyriacou *et al*., 2016)

Depending on the nature of species, microgreens are harvested from 7-14 days of germination, exceptionally in some species such as celery it is harvested in 21 days. The microgreen plants reaches the height of 2.5 cm to 7.6 cm and have a fully expanded cotyledon leaves with emerging or slightly expanded first pair of true leaves at the time of harvest. The scissors are used to harvest the microgreens that are cut along with the stem.

If microgreens are not harvested at proper stage there is a rapid elongation of stem and leaves that leads to the deterioration of flavour and colour.

The higher respiration rate with immature tissue and delicate structure makes microgreens highly perishable. They usually have a very short shelf life of about 3 to 5 days of harvest at ambient temperature. Hence an appropriate post-harvest care should be given immediately after the harvest is done. Pre-cooling is one of the techniques that expands the self life where hydro cooling technique sounds good. Some of the packaging technologies such as modified atmospheric packaging can also be used for shelf life extension without the quality or freshness being lost. Treatment of microgreens with sodium hypochlorite after harvest may prevent them from microbial contamination.

Conclusion

Overall, microgreens are the vital novel source to overcome malnutrition problem and can be produced in larger extent in both urban and peri-urban areas. Microgreens would be the cheapest source for phytonutrients and bioactive compounds for maintaining a well-balanced diet. The researchers must take into consideration in extending their shelf life as it is highly perishable in nature and technology for their extended shelf life must be standardized.

References

Kyriacou, M.C., Rouphael, Y., Di Gioia, F., Kyratzis, A., Serio, F., Renna, M., De Pascale, S. and Santamaria, P., 2016. Micro-scale vegetable production and the rise of microgreens. Trends in Food Science & Technology 57,103-115**.**

Kou, L., Yang, T., Luo, Y., Liu, X., Huang, L., Codling, E., 2014. Pre-harvest calcium application increases biomass and delays senescence of broccoli microgreens. Post harvest biology and technology 87, 70-78.

Xiao Z., Lester G.E., Luo Y., Wang Q., 2012. Assessment of vitamin and carotenoid concentrations of emerging food products: edible microgreens. J. Agric. Food Chem., 60, 7644-7651.

www.pahadiagromagazine.in
The Pahadi Agriculture e-Magazine
ISSN: 2583-7869
Volume-2, Issue-5
Article ID: 10219

खीरावर्गीय फसलों में फलमक्खी, *बैक्ट्रोसेरा कुकुर्बिटी* (टेफ्रिटिडीः डिप्टेरा), का प्रबंधन

[1]डॉ. द्वारका' और[2] निशा चढ़ार
[1]कीटशास्त्र विभाग, जवाहर लाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर, मध्य प्रदेश- ४८२००४
[2]एम.एस.सी. (बॉटनी), सरकारी पीजी कॉलेज, टीकमगढ़, मध्य प्रदेश- ४७२००१

पूरे भारत में सबसे आम और सबसे विनाशकारी कीट है। भारत में आमतौर पर पाई जाने वाली दो अन्य संबद्ध प्रजातियाँ *डैकससिलियाटिस* और *बैक्ट्रोसेरा डहर्सलिस* हैं। अधिकांश फल मक्खियों की तरह, यह फलों और फलों को महत्वपूर्ण मात्रा में नुकसान पहुंचा सकती है। सवंमित फल विपणन योग्य नही रहते हैं। फल मक्खी का शरीर और पेट मुख्यतः नारंगी-भूरे रंग का होता है। यह लगभग ६-८ मिमी लंबा है। पंखों पर दो विशिष्ट धुएँ के रंग के भूरे रंग के धब्बे होते हैं (एक सिरे पर और एक पंख के पिछले हिस्से पर)।

अन्य पोषकः खरबूजा, टमाटर, मिर्च, अमरूद, नींबू, नाशपाती, अंजीर, फूलगोभी, आदि।

क्षति के लक्षण- इस कीट के कीड़ों द्वारा नुकसान पहुंचाने से फलों से भूरा, रालयुक्त तरल पदार्थ निकलने लगता है और फल विकृत हो जाते हैं। कीड़े फलों के गूदे को खाते हैं और समय से पहले गिरने का कारण बनते हैं। द्वितीय कजीवाणु संक्रमण के कारण प्रभावित फल सड़ जाते हैं। मानसून की पहली बारिश के बाद, संक्रमण अक्सर १०० प्रतिशत तक पहुँच जाता है।

जीवन चक्र-मैगट्स बिना पैरों के और बिना सिर वाले, गंदे-सफेद, झुरझुरीले प्राणियों जैसे दिखाई देते हैं, जो एक सिरे पर मोटे होते हैं और दूसरे सिरे पर एक बिंदु की तरह पतले होते हैं। वयस्क मक्खियाँ लाल भूरे रंग की होती हैं और छाती पर नींबू-पीले निशान होते हैं। वयस्क मक्खियाँ सुबह के समय प्यूपा से निकलती हैं और शाम के समय संभोग करती हैं। मादा औसतन १४-५४ दिनों में ५८-६५ अंडे देती है। अंडे की अवधि १-६ दिन, लार्वा अवधि ३ - २१ दिन। यह मिट्टी में गहराई तक प्यूपा बनाता है। प्यूपा बैरल के आकार का, हल्का भूरा, प्यूपा अवधि ६-३० दिन का होता है। एक वर्ष में कई पीढ़ियाँ होती हैं।

1. ***बैक्ट्रोसेरा कुकुर्बिटी***- कहस्टल बैंड के साथ हाइलाइन पंख चौड़े और उभरे हुए, गुदा धारियां अच्छी तरह से विकसित और पीछे की क्रहसन सें शीर्ष पर भूरे और भूरे रंग के धब्बों के साथ घनी सीमा पर होती हैं।

2. *बैक्ट्रोसेरा सिलियाटस*- *बैक्ट्रोसेरा* कुकुर्बिटी से छोटा, लौह युक्त भूरा शरीर, तीसरे टर्गाइट के दोनों ओर प्रमुख गहरे भूरे रंग का अंडाकार धब्बा होता हैं।

3. *बैक्ट्रोसेरा जोनाटा*- शरीर पीलापन लिए हुए है, तीसरे टर्गाइट पर हल्के पीले रंग की पट्टी है और पंख १०-१२ मी तक फैला हुआ है, कहस्टल बैंड और एनल बैंड अधूरा होता है।

प्रबंधन-

- सवंमित फलों और सूखे पत्तों को इकट्ठा करके गहरे गड्ढों में डालकर नष्ट कर दें।
- स्थानिक क्षेत्रों में, बुआई की तारीखें बदल दें क्योंकि मक्खी की आबादी गर्म शुष्क परिस्थितियों में कम होती है और बरसात के मौसम में अपने चरम पर होती है।
- प्यूपा को मारने के लिए फसल के बाद बार-बार बेल के नीचे की मिट्टी को हिलाएं या प्रभावित खेत की जुताई करें।
- प्सली वाली लौकी को जाल वाली फसल के रूप में उपयोग करें और पत्तियों की निचली सतह पर वयस्क मक्खियों के एकत्र होने पर ५०० लीटर पानी में इमामेक्टिनबेन्जोएट १.० किलोग्राम प्रति हेक्टेयर डालें।
- मक्खियों को फँसाने के लिए सिट्रोनेला तेल, नीलगिरी तेल, सिरका (एसिटिक एसिड), डेक्सट्रोज और लैक्टिक एसिड जैसे आकर्षक पदार्थों का उपयोग करें।
- प्रति हेक्टेयर ५० लीटर पानी में ५० मिलीलीटर फिफरोनिल ५० ईसी ०.५ किलोग्राम गुड़/चीनी मिलाकर चारा स्प्रे लगाएं। साप्ताहिक अंतराल पर दोहराया गया चारे को खेत के विभिन्न कोनों पर रखे मिट्टी के ढक्कनों में रखें।
- जाल फसल के रूप में उगाए गए मक्के के पौधों पर चारे का छिड़काव करें।
- ५ ग्राम गीला मछली का भोजन छह छेद (३ मिमी व्यास) वाले पहलिथीन बैग (२० × १५ सेमी) में रखें।
- मक्खी जाल का उपयोग करें: ५ ग्राम गीला मछली का भोजन छह छेद (३ मिमी व्यास) वाले प्लास्टिक कंटेनर में रखें, बैग के नीचे से दो सेमी। कहटन प्लग में फिफरोनिल की एक बूंद (०.१ मिली) डालें और इसे बैग के अंदर रखें। फिफरोनिल को हर हफ्ते डाला जाना चाहिए और मछली वाले भोजन को २० दिनों में एक बार नवीनीकृत किया जाना चाहिए (२० जाल/एकड़)।
- मिथाइल यूजेनहल भिगोए हुए प्लाईवुड टुकड़े (२"× २") वाले फ्लाई ट्रैप का उपयोग करें। मक्खियों को इकट्ठा करें और नष्ट करें.
- प्यूपल पैरासिटॉइड्स जैसे *ओपियस फ्लेचरी, ओपियस कहम्पेनसैटस* और *ओपियस इनसिसस* (ब्रैकोनिडी), *स्पैलैंगिया फिलीपिनेंसिस, डिरहिनस लोजोनेंसिस* और *पचीसेपॉइडियस डेब्रियस, डिरहिनस गिफार्डी* का संरक्षण करें।

सावधानी–

खीरे में अत्यधिक फाइटोटहक्सिक, कहपर अहक्सीक्लोराइड, बोर्डो मिश्रण और सल्फर डस्ट का उपयोग नहीं किया जाना चाहिएं।

प्रमुख खीरावर्गीय फसलें

www.pahadiagromagazine.in
The Pahadi Agriculture e-Magazine
ISSN: 2583-7869
Volume-2, Issue-5
Article ID: 10220

ORGANIC COTTON CULTIVATION FOR SUSTAINABLE ENVIRONMENT

S. Lakshmanan[1], S.R. Shri Rangasami[2], P. Dhamodharan[3]
[1]PG Scholar, [2]Associate Professor, [1,2,3] Department of Agronomy
Tamil Nadu Agricultural University, Coimbatore

Introduction: Cotton serves as the fundamental raw material for numerous consumer and industrial goods manufactured worldwide. Its significance in contributing to the food and fiber industry is on the rise. Cotton is labeled as 'organic' when cultivated without synthetic chemicals like pesticides, growth regulators, and defoliants, along with chemical fertilizers. However, the organic designation is only applicable when the cotton is officially certified as organic. Organic production, encompassing various definitions, primarily revolves around ecological management that supports biodiversity, biological cycles, and soil activity. This approach emphasizes minimal dependence on external inputs and employs practices to preserve and enhance ecological balance. The cultivation of organic cotton is gaining ground both in agricultural practices and market acceptance. The process involves abstaining from toxins and synthetic fertilizers, using natural fertilizers, compost, and soil amendments. Additionally, natural pest control methods, such as employing ladybugs to combat harmful insects, contribute to making organic cotton cultivation a sustainable and viable venture.

What is organic cotton?

Organic cotton is cultivated within agricultural frameworks that align with natural processes rather than opposing them. This approach involves the exclusion of synthetic pesticides and genetically modified (GMO) seeds, presenting a more sustainable and regenerative model for cotton production. The adoption of organic cotton not only provides an alternative but also supports farmers and the environment. Organic farming systems have the capacity to maintain and enhance the well-being of soils, ecosystems, and communities by relying on ecological processes, biodiversity, and localized cycles. This stands in contrast to the use of external inputs that may have detrimental effects on the environment and human health.

Why is organic cotton important?

Encouraging organic production not only yields financial advantages for farmers through higher market prices for their cotton but also generates positive effects on their land. Moreover, it can contribute to addressing the challenge of climate change by mitigating greenhouse gas emissions, sequestering substantial amounts of carbon, and fostering resilience among farmers in the face of changing climatic conditions. Our aim is to increase the adoption of organic cotton farming by supporting farmers in maintaining or transitioning to this environmentally friendly practice.

Reasons to Choose Organic Cotton

The demand for organic cotton on a global scale is rapidly increasing, leading to its designation as a preferred fiber due to its ecological and social advancements. According to the Textile Exchange's 2022 report, the worldwide production of organic cotton surged by 37.37% compared to the previous year, rising from 249,153 tonnes in 2019–2020 to 342,265 tonnes in 2020–2021. In the United States, the organic fiber market experienced a 10% growth from the previous year, reaching $2.3 billion in 2021, with organic cotton constituting the majority of sales at $2.1 billion in 2020. The value of organic cotton remains high in the US market, with organic cotton seed prices ranging from $500 to $700 per ton, in contrast to conventional cotton seeds priced at $225 to $345 per ton.

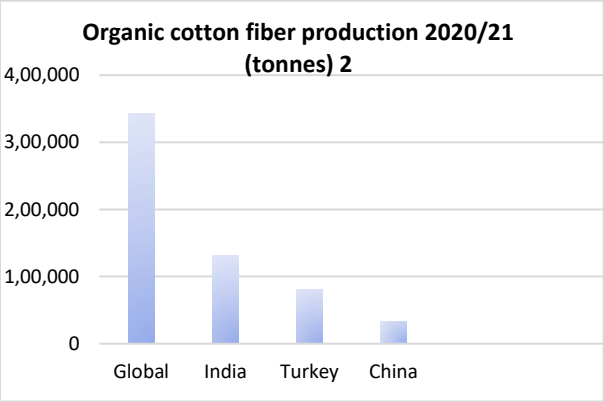

Status of organic cotton production

The production of organic cotton has shown an upward trend, with 810,934 metric tons produced in 2020-21, compared to 335,712 metric tons in 2019-20 and 312,876 metric tons in 2018-19. This increase indicates that organic cotton production is not declining.

The Department of Agriculture and Farmers Welfare is executing a cotton development program as part of the National Food Security Mission (NFSM) in 15 major cotton-growing states, aiming to boost both production and productivity. Additionally, the ICAR-Central Institute for Cotton Research (CICR) is actively engaged in researching and refining technologies for organic cotton production across the country. Furthermore, the government is promoting organic farming through a dedicated scheme called Paramparagat Krishi Vikas Yojana (PKVY), further emphasizing its commitment to sustainable agricultural practices.

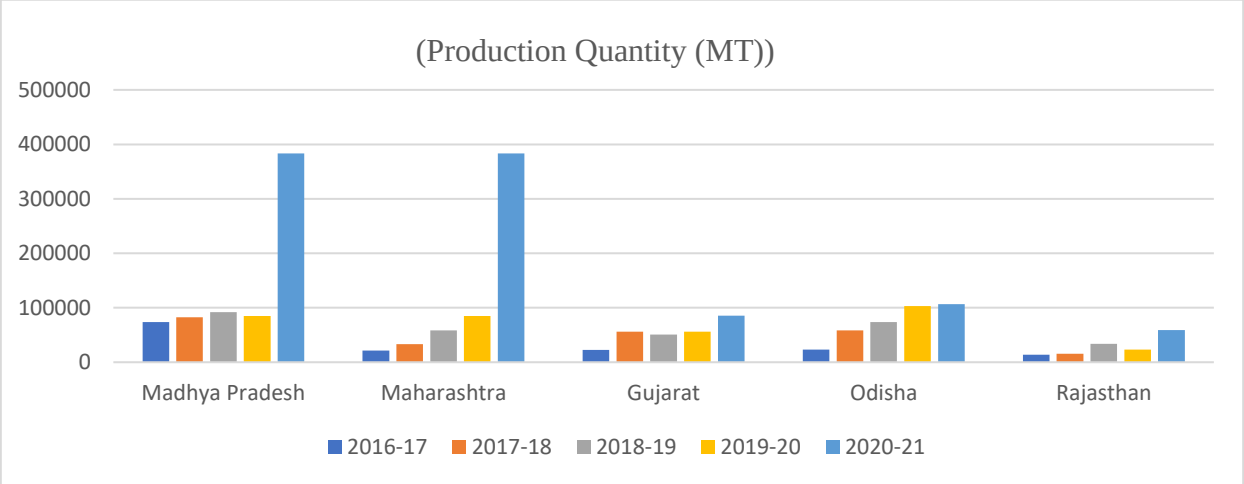

State wise Production of Organic Cotton during 2016-21

Difference between conventional and organic cotton production

S.No	Various effects	Conventional Cotton	Organic Cotton
1.	Environment	Pesticides result in the mortality of beneficial insects, contamination of soil and water, and the development of pest resistance.	Enhanced biodiversity, a harmonious ecological balance between pests and beneficial insects, and the absence of pollution.
2.	Health	Exposure to pesticides can lead to accidents and increase the risk of chronic diseases such as cancer, infertility, and weakness.	Organic food crops are cultivated without the use of pesticides, ensuring there are no associated health risks.
3.	Soil fertility	The utilization of chemical fertilizers and inadequate crop rotation lead to a risk of reducing soil fertility.	Organic manures and crop rotation practices are utilized to maintain or enhance soil fertility.
4.	Market	Individual farmers often face challenges in an open market where buyers show little loyalty, leading to dependency on fluctuating general market rates.	Farmers often organize into groups, allowing for a closer relationship with market partners and providing the option to sell products labeled as 'organic' at a higher market price.
5.	Economy	The production costs are elevated, presenting a significant financial risk, and high yields are achievable only in favorable years.	Once soil fertility improves, farmers experience lower input costs, reduced financial risk, and achieve satisfactory yields.

Various benefits of Organic Cotton cultivation

1. Biodegradability: Organic cotton decomposes more quickly when properly composted, unlike conventional cotton that releases toxins into the soil during degradation. This makes organic cotton safer for both the soil and the organisms depending on it.

2. Cost-Effective Cultivation: Organic cotton farming avoids hazardous chemicals and artificial fertilizers, saving farmers from the expense of these inputs. By steering clear of genetically modified (GM) seeds and relying on seed-saving practices, farmers can sustainably work with the environment.

3. Hypoallergenic: Organic cotton products are ideal for individuals with sensitive skin due to their non-irritating and soft qualities. The absence of chemical treatments allows organic cotton to maintain a gentler texture compared to conventional cotton.

4. Durability and Sustainability: Organic cotton undergoes minimal processing without the use of chemicals, resulting in products that feel better and last longer. This approach has the potential to reduce global warming by 46%.

5. Reduced Water Usage: Organic cotton farming consumes 88% less water than conventional cotton farming, alleviating pressure on water supplies. The use of rain-fed water and avoidance of chemicals contribute to a healthy soil balance, enabling farmers to cultivate additional crops alongside cotton.

6. Limited Exposure to Hazardous Chemicals and Dyes: Organic cotton farming eliminates the health risks associated with pesticide poisoning and chronic illnesses, which afflict 44% of conventional cotton farmers annually. The cultivation of diverse crops alongside cotton reduces soil stress, while fair pricing for organic cotton supports farmers.

7. Climate Change Mitigation: Organic cotton production promotes a balanced soil ecosystem, enhancing carbon sequestration and contributing to the fight against climate change.

8. Price Premiums: Farmers cultivating organic cotton benefit from substantial price premiums. This incentivizes the use of traditional cultivation methods, leading to larger yields and fair market compensation.

Conclusion

In conclusion, organic cotton cultivation offers a multitude of compelling benefits that extend beyond the realm of sustainable agriculture. From its biodegradability and cost-effectiveness to its hypoallergenic and durable properties, organic cotton emerges as a conscientious choice for both consumers and farmers alike. By reducing water usage, limiting exposure to hazardous chemicals, and actively contributing to climate change mitigation, organic cotton stands as a champion of environmentally friendly and socially responsible practices. Moreover, the economic advantages, including price premiums for farmers, serve as powerful incentives to embrace organic cotton cultivation. As we navigate the challenges of a rapidly changing world, organic cotton represents a sustainable and ethical path forward, fostering a harmonious relationship between agriculture, the environment, and human well-being.

Reference

1. Mageshwaran, V., Satankar, V., Shukla, S. K., & Kairon, M. S. (2019). Current status of organic cotton production. *Indian Farming*, 69(02), 09-14.
2. Eyhorn, F., Ratter, S. G., & Ramakrishnan, M. (2005). Organic cotton training manual.
3. https://organiccottonaccelerator.org/why-organic-cotton/
4. https://pib.gov.in/Pressreleaseshare.aspx?PRID=1797671

www.pahadiagromagazine.in

The Pahadi Agriculture e-Magazine ISSN: 2583-7869

Volume-2, Issue-5 Article ID: 10221

"Uber for Tractors" Concept: Promoting Inclusive Agricultural Technologies

Dhamodharan P[1], Somasundaram S[2], Anantharaju P[3] and R Chinnadurai[4]

[1]Ph.D Scholar, [2]Professor & Head, [3]Associate Professor (PB&G), [4]Senior Research fellow,

Cotton Research Station, Veppanthattai-621116

Introduction:

The accessibility of agricultural technologies is crucial for ensuring sustainable and equitable development, particularly in regions where traditional methods like hand tools and animal power persist. The significance of making automation processes inclusive across all types of agricultural producers, including small-scale farmers in developing nations, cannot be overstated. In areas heavily reliant on manual labor or draught animal power, there exists an opportunity to leapfrog into agricultural automation, thereby enhancing productivity and positively impacting livelihoods. Creating accessible and neutral-scale technologies is essential, achieved through innovative cooperatives, associations, or market methods that address scale limitations faced by small-scale agricultural producers. For instance, rental services for expensive and complex farm machinery, including tractors, can be facilitated through cooperatives or digitally-enabled platforms. An example is the "Uber for Tractors" program, allowing farmers to access machinery through a convenient digital booking system.

The foundation of automation lies in digital technologies, encompassing robotics and artificial intelligence. Governments play a pivotal role in advocating for broader access to these technologies. This involves advancing necessary infrastructures, establishing suitable legal frameworks, and facilitating the development of knowledge and skills among farmers. To achieve this, a collaborative effort between governments and farmers is imperative. Recognizing the positive impact of digital technology adoption on the economy, society, and environment is the first step. Ensuring accessibility, inclusivity, and adaptation to local conditions should be prioritized to reach a diverse range of potential beneficiaries. This approach is crucial for preventing the exacerbation of technological gaps that could disproportionately affect vulnerable groups, including women, and rural areas. Embracing digital technologies in agriculture is not just a technological advancement but a pathway toward more sustainable, efficient, and inclusive agricultural practices.

Transforming Challenges into Opportunities

The innovative idea of developing an "Uber for tractors" holds the potential to address several key challenges in agriculture, turning them into opportunities for enhanced

efficiency and accessibility. This concept involves creating a digital platform that connects farmers requiring tractor services with available tractor operators, offering a range of benefits:

1. **Efficiency Enhancement:** The platform facilitates quick connections between farmers and tractor operators, ensuring timely completion of essential farming tasks, particularly during peak seasons. This efficiency can significantly impact overall agricultural productivity.
2. **Access to Machinery for All:** Small and medium-scale farmers, who might not own expensive tractors, gain access to vital machinery for their fields. This democratization of access to agricultural equipment supports a more inclusive and sustainable agricultural sector.
3. **Cost-Effectiveness:** Farmers who do not require a tractor year-round can benefit from a more cost-effective solution. Renting a tractor when needed, rather than investing in purchasing and maintaining equipment, can lead to significant cost savings.
4. **Increased Productivity:** Timely access to tractor services ensures that crucial farming activities such as plowing, seeding, or harvesting are completed on schedule. This can contribute to increased overall farm productivity.
5. **Income Generation for Operators:** Tractor operators can leverage the platform to expand their services to a broader market. This has the potential to increase their income by utilizing their equipment more efficiently and serving a larger customer base.
6. **Technology Integration:** The platform can incorporate advanced technologies for efficient scheduling, real-time tracking of services, and secure payment systems. This integration enhances the overall user experience, making the process more streamlined and user-friendly.

The "Uber for tractors" concept exemplifies how technology can be harnessed to address longstanding challenges in agriculture, fostering a more connected, efficient, and economically viable farming ecosystem. This innovative approach not only benefits individual farmers and tractor operators but contributes to the sustainable development of the agricultural sector as a whole.

Custom Hiring Centers App

The Indian government's introduction of a mobile application for the rental of farm equipment marks a significant step in addressing the challenges faced by small and marginal farmers. Similar to the concept of Uber for taxis, this app connects users with over 38,000 Customer Hiring Centers (CHCs) across the country, providing approximately 2.5 lakh machinery equipment for rent annually. Positioned strategically within 5, 20 and 50 km of farming areas, these CHCs offer a diverse range of equipment displayed on the app along with associated fees. CHCs, functioning as collections of farm machinery and tools available for rent, aim to bridge the financial gap preventing small farmers from

outright equipment purchase. The geographic positioning of CHCs, within a 5 to 7-40 to 50 km radius around land holdings, serves to minimize the cost and duration of transporting agricultural machinery. The government's 'Custom Hiring' model, coupled with the private sector's 'Uberization,' introduces revolutionary approaches to offer farmers affordable access to farm machinery, including harvest combines and tractors, along with operator services. As the average farm size in India continues to decrease, particularly among marginal and small holdings, traditional mechanization becomes economically challenging. The 'pay per use' basis of these models enables farmers to access innovative technologies without substantial upfront investments. This transformative shift holds the potential for increased agricultural output, higher farm income, reduced production costs, minimized postharvest losses, and enhanced efficiency through the optimal utilization of new machines. Moreover, these models contribute to the overall sustainability and development of the agricultural sector.

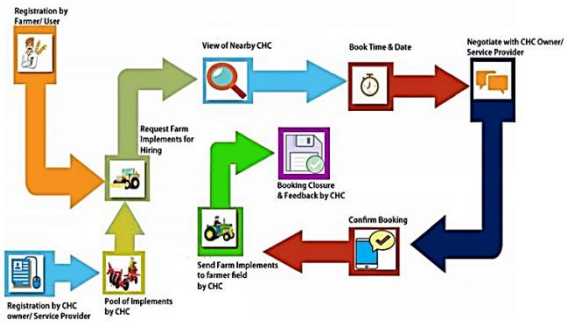

Figure 1. Process flow of hiring model

The Hiring Model (Figure 1) is a result of the evolution of the Indian government's 'Sub-Mission on Agricultural Mechanization (SMAM) Scheme,' which was initiated in 2014-15 under the umbrella of the 'National Mission on Agricultural Extension & Technology (NMAET)'. The primary objective of the scheme was to extend farm mechanization to marginal and small farmers, as well as areas with limited access to farm machinery, ensuring the availability of high-cost machinery for smallholder farmers.To support this initiative, the federal government endorsed the establishment of Custom Hiring Centers (CHCs) to provide agricultural machinery hiring services. The government committed a financial aid level (subsidy) of 40% of the machine cost to farmers, firms, and societies aiming to establish these CHCs. These centers are required to cover a minimum of 10 hectares per day and a total of 300 hectares per cropping season. Additionally, the government incentivizes the construction of high-tech centers by offering a 40% subsidy on the machine cost, encouraging the use of advanced, high-value machines for enhanced production. These high-tech hubs must cover at least 500 acres each planting season. Furthermore, the government provides an 80% subsidy to stimulate the establishment of farm machinery hubs, also known as farm machinery banks, in specified locations for custom hiring. These hubs should cater to a minimum of 8 farmers per hub/bank. Maintenance and training assistance are offered to established CHCs and hi-tech hubs by 14 Krishi Vigyan Kendras (KVKs), manufacturers, Agricultural Technology Management Agencies (ATCs), and Indian Council of Agricultural Research (ICAR) centers. This comprehensive support system aims to promote the efficient use of farm machinery and technology in agriculture.

Conclusion- The concept of an "Uber for tractors" presents a promising solution to the resource and operational challenges faced in agriculture. By establishing a platform that connects farmers in need of tractor services with available tractor operators, this innovative model streamlines the process of accessing agricultural machinery. Farmers can easily request tractor services for various tasks such as plowing or planting, and nearby tractor operators can efficiently fulfill those requests. This approach not only enhances the efficiency of farming operations but also addresses the cost-effectiveness and accessibility issues, especially for small and medium-scale farmers who may not own expensive tractors. Overall, the "Uber for tractors" model emerges as a valuable solution that benefits both farmers and tractor operators in the agricultural sector.

“द पहाड़ी एग्रीकल्चर”

ई-पत्रिका

‘पर्वतीय कृषि की ऑनलाइन मासिक पत्रिका’

संपर्कसूत्र:

pahadiagriculture@gmail.com

https://pahadiagromagazine.in